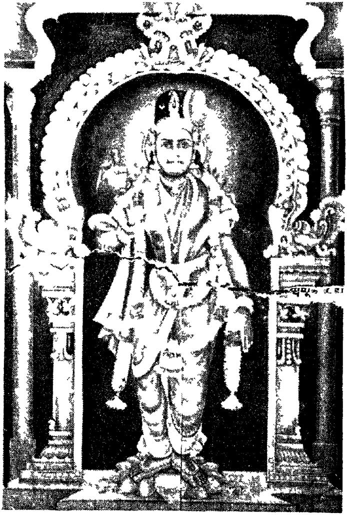
अप्रैल १९५५

वैदिकधर्म

चैत्र २०१२

अंक ४

वर्ष ३६



मीनाक्षी देवी (मदुरा)

ॐ

ऋग्वेद का सुन्दर मुद्रण

चारों वेदोंका अत्यंत सुन्दर तथा सब प्रकारसे उत्कृष्ट मुद्रण करनेका निश्चय हमने किया है। सर्वप्रथम 'ऋग्वेद' के तीन आकारके मुद्रण होंगे। इनमें पूर्णरीतिसे अशुद्धि नहीं रहेगी ऐसा पराकाष्ठाका प्रयत्न किया जा रहा है। इस कार्यके लिये अच्छे घनपाठी वेदमूर्तियोंकी सहायता ली जायगी और हर प्रकारकी दक्षता, सुन्दर, उत्तम तथा निर्दोष मुद्रण करनेके लिये रखी जायगी।

प्रथम '**ऋग्वेदका मुद्रण**' होगा। इस कार्यके लिये दस महिने लगेंगे। जो अपने पास सुन्दर, उत्तम तथा निर्दोष वेद ग्रन्थ रखना चाहते हैं वे '**ऋग्वेद**' के लियेही पेशगी मूल्य भेजकर ग्राहक बनें। पीछेसे मूल्य बढेगा।

जिल्दे अनेक प्रकारकी बनायी जायगी। इनका मूल्य नीचे दिया है। ग्राहक जो लेना चाहते हैं वे पेशगी मूल्य अतिशीघ्र भेज दें और शीघ्र ग्राहक बनकर लाभ उठावें।

१ सर्वोत्कृष्ट "ऋग्वेद" का ग्रंथ

इसका मुद्रण बडे अक्षरोंमें तथा बडे १०"×१५" इंच आकारके कागज पर होगा। चारों ओर सुन्दर रंगीन आकर्षक कमलोंकी सुन्दर किनारी रहेगी। मध्यमें बडे अक्षरोंमें ऋग्वेदके मन्त्र सुन्दर ... पृष्ठ द्विगुणित आकारका पृष्ठ रहेगा। अक्षर बडे रहेंगे, कागज भी अच्छा बढिया लगाया जायगा। आजतक इतना सुन्दर ऋग्वेदका मुद्रण किसीने किया नहीं, इतनी सुन्दरता इसमें रहेगी।

जिल्दे अनेक प्रकारकी रहेंगी। इनके मूल्य इस तरह होंगे—

१ कमलोंकी सुन्दर किनारीवाली आकर्षक बडे सुनहरी अक्षरोंवाली जिल्द, पु... तीनों ओर सुनहरी चमकीला गिल्डींग रहेगा। पुस्तक पर पक्का पारदर्शक आवरण रहेगा। कागज बहुत बढिया ८० पौंड ... रहेगा। ऐसे ऋग्वेदका बडे आकारवाला यह पुस्तक परम आकर्षक रहेगा। इसका मूल्य इस तरह रहेगा—

ऋग्वेदके पुस्तकका	मूल्य	जिल्दका व्यय	पेशगी मूल्य	पीछेसे मूल्य	डाक व्यय
१ प्रथमश्रेणी	२०	१००)	१२०)	१५०)	८)
२ द्वितीयश्रेणी	२०)	५०)	७०)	१००)	७)
३ तृतीयश्रेणी	२०)	१०)	३०)	५०)	७)
यही पुस्तक उत्तम कपडेकी जिल्द सुनहरी अक्षरोंके नामके समेत—					
४ चतुर्थश्रेणी	२०)	८)	२८)	४०)	५)
५ पंचमश्रेणी	२०)	५)	२५)	३५)	५)
६ षष्ठश्रेणी	२०)	३)	२३)	३०)	५)
यही पुस्तक केवल कागजकी जिल्दमें—					
कागजकी जिल्द २०)				२१)	५)

[आगे कव्हर पृष्ठ पर देखिये।]

वैदिक धर्म

[अप्रैल १९५५]

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहसंपादक

महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से ५।।) रु. विदेशके लिये ६।।) रु.

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

माननीय श्री युवराज बहादुर कर्णसिंहजी सदरे रियासत जम्मू-काश्मीरराज्यका

महत्वपूर्ण पत्र

कर्णमहल, श्रीनगर काश्मीर

श्रीमान् पण्डितजी, ता० २५-१०-१९५४

आदेशानुसार मैं आपको यह सन्देश श्री युवराज कर्णसिंहकी ओरसे भेज रहा हूँ कि यद्यपि उन्होंने आपके रचित 'संस्कृत पाठमाला' के सभी अङ्कोंका अध्ययन अभी नहीं कर पाया है तथापि जितने पढे हैं उनसे वे प्रभावित हुए हैं।

निश्चय ही संस्कृतभाषाको बालसुलभ बनानेके लिये आपका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है और संस्कृत-भाषाकी प्रारम्भिक शिक्षामें यह पाठमाला अवश्य ही लाभप्रद सिद्ध होगी।

प्रति-

श्री श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्यायमण्डल

भवदीय

शिवदेवसिंह

स्टाफ-आफिसर

श्री युवराज बहादुर, सदरे रियासत

जम्मू-काश्मीर राज्य

मध्यप्रदेश सरकार द्वारा संस्कृत-भाषा-परीक्षाओंको

प्रो त्सा ह न

<u>सच्ची प्रतिलिपि</u>

कार्यालय, संचालक लोक शिक्षा, मध्य प्रदेश।

ज्ञापन क्रमांक मा / च / १५३ / ५४. २ नागपूर दिनांक १५ जनवरी १९५५ प्रति,

१) प्राचार्य, प्रान्तीय शिक्षण महाविद्यालय, [illegible]पूर।

२) शिक्षण अधीक्षक, मध्य प्रदेश।

३) शाला निरीक्षिका, मध्य प्रदेश।

विषय : माध्यमिक शालाओंमें संस्कृत विषय पढाना।

निर्देश : इस कार्यालयका पृष्ठांकन क्रमांक मा / च / १५३ / ५४. १ दिनांक १३-८-५४

१ शिक्षा विभागके ज्ञापन क्रमांक ३८६९ / २८९६ / १८ दिनांक ५-९-५४ द्वारा माध्यमिक शालाओंके विद्यार्थियोंको संस्कृत विषयकी परीक्षा देनेके लिये प्रोत्साहन दिया जावे ऐसे अनुदेश दिये गये हैं।

२. स्वाध्यायमण्डल, आनंदाश्रम, किल्ला पारडी (जि. सूरत) संस्कृत विषयकी निम्नलिखित परीक्षायें लेता है।

१ प्रारम्भिणी (प्रारम्भिक परीक्षा) २ प्रवेशिका (सामान्य परीक्षा)

३ परिचय (सामान्य परीक्षा) ४ विशारद (पदवी परीक्षा)

३. आपके अधिकार क्षेत्र की माध्यमिक शालाओंको स्वाध्याय मण्डल द्वारा नियत की गई परीक्षाओंके नियमोंसे परिचित कराया जावे तथा माध्यमिक शालाओंके विद्यार्थियोंको इन परीक्षाओंमें बैठनेके लिये प्रोत्साहन दिया जावे। परीक्षा सम्बन्धी संपूर्ण जानकारी स्वाध्याय मण्डल, भारत मुद्रणालय, किल्ला पारडी (जि. सूरत) से प्राप्त हो सकती है। शालाओंमें परीक्षा केन्द्र खोलनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

र० प्र० वर्मा,

संचालक लोक शिक्षा, म० प्र० की ओरसे।

वर्ष ३६

वैदिक धर्म

अंक ४

क्रमांक ७६

चैत्र, विक्रम संवत् २०१२, अप्रैल १९५५

प्रजाकी उन्नति करनेवाला नेता

यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥

ऋ० ७।६।४

(नृतमः) उत्तम नेता (अपाचीने तमसि मदन्तीः) [illegible] अन्धकारमें [illegible] आनन्द माननेवाली अपनी प्रजाको (शचीभिः) अपनी बुद्धिको बढाने-वाली शक्तियोंसे (प्राचीः चकार) उदयोन्मुख करता है, ऐसे (अनानतं) दीन न होनेवाले, (पृतन्यून् दमयन्तं) सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले, (वस्वः ईशानं) सब प्रकारके धन प्रजाकी उन्नतिके लिये अपने पास रखनेवाले (अग्नि-अग्रणी) तेजस्वी अग्रणीका, नेताका (गृणीषे) हम गुण वर्णन करते हैं।

इस शासकका गुणगान करो कि जो अपनी अज्ञान प्रजाको ज्ञानी बना-कर अभ्युदयके मार्गसे ठीक तरह प्रगति सम्पन्न करता है। दीनता अपने पास आने नहीं देता, शत्रुको दूर करता, धन प्रजाकी उन्नतिके कार्य करनेके लिये अपने पास रखता है।



भारतीय संस्कृतिके अनुसार
भारतीय संविधानकी समालोचना

(लेखक श्री पं. रामावतारजी, विद्याभास्कर)

[गताङ्कसे आगे]

संविधानकी रूपरेखा

प्रजाकी सदिच्छापूर्ण अप्रमाणित सम्मति ही प्रजातन्त्र राज्यकी रचनाका मूलाधार है। प्रजामें प्रजातन्त्रकी स्थापना की सदिच्छायें जागे बिना उसके ऊपर प्रजातन्त्रको थोपा नहीं जा सकता। थोप दिया जाय तो वह प्रजातन्त्र नहीं बन सकता। वह तो थोपनेवालेका एकतंत्र या दलतन्त्र ही रह जाता है। आजका भारतीय शासन एकदलीय तन्त्र है। वह किसी भी रूपमें प्रजातन्त्र नहीं है। प्रजातन्त्रको प्रजातन्त्र रूपमें तभी स्वीकार किया जा सकता है। जब उस पद्धतिने प्रजाकी ही स्वतः प्रेरणा और पूर्ण हार्दिक स्वीकृति से विकास पाया हो। प्रजातन्त्रका बनावटी चेहरा लगा लेनेवाली जिस पद्धतिने प्रजाके भीतरसे विकास न पाया हो, जो उसकी इच्छाकी अपेक्षा न करके उसपर ऊपरसे थोपी गई हो उससे प्रजाको प्रजातन्त्रपनेका वास्तविक कोई लाभ नहीं होगा और इसीलिये उसे प्रजातत्र भी नहीं कहा जा सकता।

राज्यव्यवस्थाके सिरपर प्रजाशक्तिका सामूहिक नैतिक शासन हो, यही प्रजातन्त्र है। राज्यव्यवस्थाके ऊपर दृढता के साथ प्रजाकी शक्तिके सामूहिक नैतिक शासनका प्रतिष्ठित रहना ही प्रजातन्त्रकी परिभाषा है। राज्यकी प्रजातन्त्रता ही उस राष्ट्रका सतयुग या रामराज्य है। यदि राजशक्तिके ऊपर प्रजाका नैतिक शासन नहीं होगा, तो प्रजातंत्र प्रजातंत्र नहीं हो सकेगा। राजशक्तिके सिरपर प्रजाशक्तिके शासनकी स्थापनाके लिये यह अनिवार्य रूपसे आवश्यक है कि प्रजाकी सम्मति अर्थात् उसकी शासनसम्बन्धी सदिच्छाओंके संग्रह करनेकी पद्धति ऐसी हो कि वह जुआ खेलने जैसी अनिश्चित और भ्रान्त न होकर सुनिश्चित भी हो और अभ्रान्त भी हो। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये प्रजाकी सम्मति संग्रह करनेके काममें यह देखना आवश्यक है कि देशकी सम्मतिसंग्रह करनेका, देशकी कायापलट कर डालनेवाला यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काम किन्हीं मनचले महत्त्वाकांक्षी यशोलोलुप उम्मेदवारोंकी भाग्यपरीक्षाके पासे फेंकने का क्षेत्र निर्माण करनेवाला तथा प्रजाशक्तिको बहका, फुसला, धमका और डराकर विपथगामी करके उसे प्रजातन्त्रके लक्ष्यसे च्युत करनेवाला न बन जाय।

दुर्भाग्यसे संसारमें आजतक प्रजाकी सम्मतिसंग्रह करनेकी किसी भी निर्दोष पद्धतिका आविष्कार नहीं हुआ। संसारकी प्रजासम्मति संग्रहकी आधुनिक समस्त पद्धतियां दोषपूर्ण हैं। आजकलकी प्रजासम्मति संग्रह करनेकी किसी भी आधुनिक पद्धतिमें निर्दोष सम्मतिको बांट लेनेवाली वह चलनी नहीं बनाई गई, जो राज्यव्यवस्थामें धूर्त अनाधिकारी स्वार्थी महत्त्वाकांक्षियोंको जानेसे रोक सकती और इस क्षेत्रको केवल सच्चे समाजसेवकोंके लिये सुरक्षित कर लेती। चुनावकी वर्तमान पद्धतियोंमें यह दोष है कि चुननेवाले लोग तो चुनावके उम्मेदवारोंके निकट संपर्कमें न आनेवाले होनेसे उनके सार्वजनिक कार्मोंके संबन्धमें अपेक्षित सेवाभाव या हृदयशुद्धिसे अपरिचित होते हैं और उधर चुनावके उम्मेदवार लोग चुननेवालोंको अपना सेवाभाव या राष्ट्र हितैषिता दिखाना आवश्यक नहीं समझते। आज इन सेवा भावहीन स्वार्थी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षी उम्मेदवारोंका स्वार्थ तो सच्चे झूठे किसी भी उपायसे केवल अपने पक्षमें लोगोंकी सम्मति प्राप्त कर लेनेतक सीमित रहता है। ये उम्मेदवार प्रजाके यथार्थ कल्याणसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखते। ये तो केवल उतना संबन्ध रखते हैं जितना अपनी यशोरक्षा या फिर कभी चुनावका अवसर आजाय तो उसके लिये आवश्यक हो। सम्मति देनेवाली अबोध प्रजा अधिक भौतिक प्रभावशाली दलबलसम्पन्न उत्पाती व्यक्तियोंका पक्षपात करनेके लिये सन्नद्ध होकर चुनावके क्षेत्रमें चुनावकी कुश्ती देखनेके लिये उपस्थित होती है। इस प्रकारकी द्यूतमयी चुनावपद्धतिके परिणामस्वरूप राज-

नैतिक महत्वाकांक्षावाले लोग अपने अपने दलोंको संगठित करके राजशक्तिको हथियानेकी कुश्तीमें अपना नाम अपनी ओरसे लिखाकर सम्मिलित हो जाते हैं। इस कुश्तीमें जीतनेवाला पहलवान चुननेवाली प्रजाका कृतज्ञ न होकर अपने आपको ही इस विजयका विधाता मान लेता है और राजनैतिक उदारताके स्थानमें अपनी साम्प्रदायिक या जातिगत या दलगत संकीर्णता अर्थात् अपने सम्प्रदाय जाति या दलकी प्रधानताको सुरक्षित रखनेकी दूषित भावनाको अपनाये रहकर राज्यव्यवस्थामें हाथ डालता है। वर्तमान चुनावपद्धति इसी महादोषके कारण असार तथा अनैतिक बन गई है। इस पद्धतिके दुष्प्रभावसे जनताकी नैतिकता नष्ट हो गई है और वह अनीतिपरायण हो गई है। इस अवांछित अवस्थाका कारण यही है कि प्रजातन्त्र शासनका जो वास्तव मूल, प्रजातन्त्रके महत्वपूर्ण वृक्षके समस्त बोझको अपनी क्षमतासे संभाल सकनेवाला तथा उस वृक्षसे प्रत्याशित उसकी समस्त फलपुष्प संपत्तिका पोषक होना चाहिये था, उस वास्तव मूलको तो उखाड़कर फेंक दिया गया, उसके स्थानमें योरोपसे एक कृत्रिम मूल उठा लाकर लगा दिया गया और उससे ऊपर बनावटी फलफूलोंवाली ऐसी "कलम" चिपका दी गई जो प्रजाशक्तिपर अस्वाभाविक प्रभाव डालकर उसे अनितीपरायण बना रही है। ऐसा करनेसे प्रजातन्त्रका दिखावा तो हो गया परन्तु प्रजातन्त्रका वृक्ष हरा भरा तथा फलपुष्पोंका [illegible] बन सका। उस बनावटी प्रजातन्त्र वृक्षके पास मूलसे रस प्रवाह आना बन्द होगया। इस व्यवस्थामें तो पत्ते ही मूल सिंचनकी ढिठाई करने लगे। आवश्यकता इस बातकी है कि भारतीय जनमत, इस अलीक प्रजातन्त्रके बनावटी कलमी वृक्षके बनावटीपनको समझे, उसको उखाड़ फेंकनेके लिये आगे आये और स्वाभाविक प्रजातन्त्रके निर्माणकी उस विधिको अपनाये जो इसी प्रकरणमें आगे चलकर रक्खी जा रही है। प्रजातन्त्रको तो मूलमेंसे उत्पन्न उसीमेंसे अंकुरित पुष्पित और फलित होना चाहिये। न कि वह प्रजाका हार्दिक अनुमोदन न पा सकनेवाले उम्मेदवारोंके ऊपर चिपकाया और प्रजापर थोपा जाना चाहिये।

किसी भी प्रजातंत्र प्रेमी राष्ट्रको जनताकी अप्रभावित सच्ची सम्मति संग्रह करनेके लिये वह विधि अपनानी चाहिये जिसमें मूलसे ही वृक्षके उत्पन्न होने, अंकुर निकालने विकसित पुष्पित और फलित होनेकी पूरी पूरी सुगमता हो। इसका एकमात्र क्रियात्मक उपाय यही है कि चुनावको अबतककी भांति जनसंख्याकी नींवपर खड़ा न रहने दिया जाय। अबतककी भांति प्रत्येक वयस्कको व्यक्तिगत रूपमें स्वच्छन्द वोटाधिकार न दिया जाय। इस आधारवाले चुनावका जनताको नीतिहीन बना डालना अनिवार्य है। चुनावको व्यक्तिगत स्वच्छन्द आधारोंपर न रहने देकर उन्हें समाज संगठनकी सुदृढ सुपरीक्षित नींवपर खड़ा किया जाना चाहिये। ऊंचा चरित्र, समाज सेवा और प्रबन्धकौशल प्रतिनिधित्वके आधार बनने चाहिये।

जनसंख्याको चुनावका आधार बनानेमें यह भावना अपने ही आप विद्यमान है कि जिस सम्प्रदाय या जातिकी संख्या अधिक होगी उसका स्वार्थ तो प्रभावशाली रहेगा और अल्पसंख्यकोंका स्वार्थ बहु संख्यकोंकी कृपापर निर्भर रहेगा। जनसंख्याको चुनावका आधार बनानेके दुष्परिणामके रूपमें उत्पन्न हुये धनिक-श्रमिकके संग्रामने उन पाश्चात्य देशोंकी शासनव्यवस्थाको विपथगामी बना डाला है, जहांसे इसे हमारे देशके कर्णधार लोग राजनैतिक दिव्य उपहारके रूपमें उधार लाये हैं। इस पद्धतिने अपनी जन्मभूमि पाश्चात्य देशोंमें तथा उनके पिछलगू अनुकरणगामी संसारभरमें जनताके स्वाभाविक संगठनोंको विध्वस्त करके राजनैतिक क्षेत्रमें द्वन्द्व कलह छीन झपट और अशान्तिको [illegible] संसारभरमें [illegible] कितना बड़ा त्राहित्राहिका कोलाहल मचा रक्खा है और इससे वहां अनर्थ कर डाला है? वह वहां आये दिन महायुद्धोंके रूपमें देखनेको मिल रहा है, यह प्रत्यक्षदर्शियोंसे अविदित नहीं है। जनसंख्याको चुनावका आधार बनाना ही नहीं चाहिये किन्तु मानवीय उदारगुणमें तथा सामाजिकता एवं प्रबन्धपटुताको ही चुनावको आधार बनाना चाहिये। जनसंख्याको चुनावका आधार बनानेसे ऐसी भयंकर समस्यायें खड़ी होजायगी जो समस्त सामाजिक जीवनको अपनी गंदगीमें सान डालेगी। जनसंख्याको चुनावका आधार बनानेसे संसारमें जो समस्यायें पैदा होगई हैं उनको सुलझाना केवल असंभव ही नहीं बन गया है प्रत्युत ये समस्यायें वनवाह्निकी भांति प्रतिदिन बढती चली जा रही हैं और अपनी उचित चिकित्सा मांग रही हैं।

यह कितनी खेदजनक स्थिति है कि आजका भारत,

जिसके पास अपनी एक स्वतन्त्र, सुपरिष्कृत, सुविचारित, विश्वविश्रुत, संसारमान्य संस्कृति है, उसी विषाक्त कलह-प्रिया पाश्चात्य चुनाव पद्धातिकी जूठनको अपनाकर, उसीका न केवल अन्धानुगामी बन गया है। प्रत्युत इस अनुगामि-तामें गौरव अनुभव कर रहा है। आजका भारत भी योरोप के पांचों सवारोंमें शामिल होने जारहा है। मानो भारतके पास परम्परा प्राप्त किसी प्रकारका राजनैतिक ज्ञानही नहीं था। आजके अंग्रेजी पढे लिखे भारतकी दृष्टिके सामने इस दूषित चुनाव पद्धतिके अतिरिक्त दूसरी किसी मौलिक चुनाव पद्धति की संभावनाही अस्वीकृत होचुकी है। आजके भारतवासीके मनमें यह भ्रान्त धारणा जड पकड गई है कि प्रजातंत्रव्यवस्था के आदि गुरु पाश्चात्य देश ही हैं। आजका समझदार समझा हुआ भारतीय समझता है कि यह प्रजातन्त्र शासनव्यवस्था हम लोगोंको दो सौ वर्षके विदेशी शासनकी कृपासे मिली है और अब हमें इसी पद्धतिको अपनी शासन व्यवस्थामें सम्मिलित रखकर आगे बढना है। हमें भारतीय शासन पद्धतिके मूल सूत्रोंसे अपरिचित आधुनिक भारतकी इस धारणापर खेदके साथ कहना पडता है कि यदि हमारी वर्तमान विधाननिर्मात्री पाश्चात्य शिक्षादीक्षादीक्षित पीढीने भारतीय मस्तिष्ककी उपज भारतकी ग्रामीण समाज व्यवस्था और उसके सामाजिक संगठनोंके सूत्रोंका जिनके ध्वंसावशेष आज भी भारतीय ग्रामोंमें विद्यमान है, विशुद्ध भारतीय आंख लेकर गंभीरतासे अध्ययन किया होता, तो हमारी इस अंग्रेजी पढी लिखी पीढीको पाश्चात्य देशोंसे राजनैतिक उधार लेनेकी घातक भूल न करनी पडती और उसे अपना विधान बनानेके लिये भोगवादी संस्कृतिवाले पाश्चात्य देशोंकी शासन व्यवस्थाओंके पोथोंसे मूल तत्व सीखनेकी आवश्यकता न पडती। इन्हें तो अपनी राज्य-व्यवस्था बनानेके लिये अपनी ही संस्कृतिमेंसे अपनी ही समाज रचनाके अनुकूल आधार ढूंढकर उन्हीं आधारोंके ऊपर इस शासन वृक्षको आधारित करना चाहिये था। हम स्पष्ट देख रहे हैं कि हमारे कर्णधारोंकी सदिच्छायें पाश्चात्य शिक्षादीक्षाके प्रभावसे पराभूत हो गई हैं। इन लोगोंका मुख तो प्रत्येक बातके लिये पश्चिमकी ओर है। ये लोग भारतको ज्ञानकी अनुपजाऊ भूमि समझने लगे हैं।

इन्हें जानना चाहिये कि भारतके ग्रामोंमें प्रागैतिहासिक कालसे आजतक वह निःस्वार्थ अच्छेद्य सामाजिक संगठन चला आ रहा है, जो सच्चे प्रजातन्त्रका मूल है, जो प्रजा-तंत्रका ढोंग करनेवाले योरोपमें आजतक नहीं है। हमारे कर्णधारोंको जानना चाहिये कि भारतके विदेशी शासनने प्रजातन्त्रकी आधारशिला उसी सामाजिक संगठनको ध्वस्त करनेके अनवरत दुष्ट प्रयत्न करके, उसे जनगणनाकी दूषित आधारोंवाली रिपोर्ट जैसे घातक हथियारोंसे नष्ट भ्रष्ट करके भारतीय जनताको भिन्न भिन्न स्वार्थी सम्प्रदायों तथा दलोंमें विभक्त करके छिन्न भिन्न तथा शक्तिहीन बना डाला है। यह हमारे देशका महादुर्भाग्य है कि अंग्रेजने शासक तथा शासितोंकी दो अलग अलग जाति बना डालनेवाली जिस परिपाटीको अपनी दुष्ट बुद्धिसे रचा था, हमारे देशने उसी दूषित परिपाटीको ज्योंका त्यों अपना लिया है। हमारे कर्णधार इस परिपाटीके हानिकारक, देशद्रोही परिणामोंको पहचान ही नहीं सके। यह कितने दुःखकी बात है कि ये लोग अपने व्यामोहसे भारतकी प्रजातांत्रिक आधारशिला ग्रामसमाजोंकी राष्ट्रनिर्मात्री शक्तिको तहस नहस कर डालनेवालोंको ही व्यवस्था-शिक्षक गुरुदेवका आसन दे बैठे और इस भोले देशके अन्धविश्वासका दुरुपयोग कर रहे हैं।

प्राचीन भारतका ग्रामसमाज एक पूर्ण स्वतन्त्र सामाजिक संगठन था। वह एक एक छोटा छोटा स्वतन्त्र राष्ट्र था। उसके पास अपनी सेना, अपनी स्वतन्त्र न्याय, अर्थ, शिक्षा, रक्षा, स्वास्थ्य आदि सभी राष्ट्रोपयोगी बातोंकी व्यवस्था थी। भारतका ग्रामसमाज इन बातोंके लिये किसी भी राज्यके दरबारका कभी भिखारी नहीं था। यह तो अंग्रेज धूर्तोंकी कुसृष्टि है कि उन्होंने ग्रामोंको राज्यव्यवस्थाका भिखारी बना डाला था। वर्तमान संविधानके संबन्धमें सबसे बडा रोना तो यही है कि हमारे देशके राजनैतिक ज्ञानसे हीन हम लोगोंने भी भारतके ग्रामोंको अंग्रेजोंकी ही भांति राज्यव्यवस्थाका भिखारी बना रहने दिया और उन्हें स्वतन्त्र राष्ट्रोंका रूप न लेने देकर राज्यव्यवस्थाका दास बना डाला। इस संबन्धमें इन लोगोंकी दुर्बुद्धिको जितना कोसा जाय उतना ही थोडा है, यह ग्रामीण व्यवस्था राज्योंके बार बार पलटते रहनेपर भी अपने प्रजातांत्रिक रूपमें खडी रहा करती थी। प्राचीन भारतीय सामाजिक संगठनोंमें ग्रामनिवासी प्रत्येक सदस्यका स्वार्थ एक जैसा

सुरक्षित रहा करता था। ग्रामसमाजका समाजपति अपनी समाजसेवा तथा चारित्रिक प्रतिष्ठाके कारण ग्रामका अनिर्वाचित अनभिषिक्त भूपति होता था। वह अपनी चारित्रिक श्रेष्ठता तथा सकलकल्याणकामनासे ग्रामसमाजका मनोनीत समाजपति होता था। वह सार्वजनिक सदिच्छाओंसे मनोनीत होनेके कारण स्वभावसे ही सार्वजनिक स्वार्थका संरक्षक, जनताका विश्वासभाजन तथा उसके सुख-दुख मानापमानका अभिन्न हृदय साथी भी था और शासितोंका प्रेमपात्र शासक भी था। उसकी शासनशक्ति सार्वजनिक अनुमोदन पा चुकी होनेके कारण समग्र समाजकी शक्तिसे अनुप्राणित होती रहती थी। हमारी आजकी स्थितिमें विदेशी शासनकी दुरिच्छाओंसे पराभूत उसी प्रजाशक्तिका पुनरुत्थान करना नितान्त आवश्यक है, जिसे विदेशी शासन अपने नाशका बीज माना करता था, जिसका उसने समूलोत्पाटन करके भारतको प्रत्येक बातके लिये सरकारपर निर्भरशील बनाकर कचहरियोंमें धक्के खानेके लिये विवश कर डाला है। प्रजातन्त्रका वृक्ष प्रजाशक्तिके पुनरुत्थानसे ही दृढमूल विकसित, पुष्पित, फलित और सुशोभित हो सकता है, अन्यथा नहीं।

यदि हम भारतके लोग प्रजाशक्तिके अधिकारको सच्चे अर्थोंमें शासनव्यवस्थाके ऊपर प्रतिष्ठित करना चाहें, तो हम सबसे पहले इस पाप बढानेवाली वयस्कमताधिकार प्रणालीको अपने राष्ट्रमेंसे धक्का देकर बाहर करें। उसके स्थानमें अपने देशके प्रत्येक ग्रामको राष्ट्र निर्माणकी सबसे पहली, सबसे छोटी इकाई मानें और मानकर उसे यह निमन्त्रण दे कि जो कोई ग्राम राज्यव्यवस्थामें सम्मिलित होना चाहे वह अपने ग्रामको चुनावकी परची डालनेके अन्धे कुयेमें न जोतकर, उसे अन्धेके समान किसी अज्ञानशील, तथा अज्ञातसेवा निष्ठावाले व्यक्तिको अपना प्रतिनिधि न बनाकर, चुनावके विषयमें जुआरी जैसा अनिश्चित लक्ष्यके लिये दौड धूप करनेवाला न बनाकर, बिना ही चुनावके अपने ग्रामसे किसी एक विश्वासपात्र, सेवानिष्ठ, सच्चरित्र, मनस्वी, प्रबन्धपटु व्यक्तिको राष्ट्रव्यवस्थाके लिये अपना प्रतिनिधि चुनकर दे। यह चारित्रिक चुनाव पद्धति कही जायगी। यह पद्धति आजसे संसारमें भारतीय चुनाव पद्धतिके नामसे प्रसिद्धि पायेगी।

इस योजनामें ग्रामोंकी जनसंख्याकी न्यूनाधिकताके अनुसार प्रतिनिधि संख्यामें कोई ह्रास-वृद्धि न होगी। छोटे बडे प्रत्येक ग्राम एक एक प्रतिनिधिको समाजशक्तिसे शक्तिमान करके जिलोंकी जनप्रतिनिधि सभाओंमें भेजा करेंगे। जिलेमें जितने ग्राम होंगे उसकी जनप्रतिनिधि सभामें उतने ही प्रतिनिधि हुआ करेंगे। प्रबन्धके सुभीतेके लिये इसके तहसील तथा परगनेवार लघु संगठन भी बनाये जा सकते हैं। वर्तमान विधानके अनुसार जिस जिलेका प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषदोंमें जितने प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार है वह जिला अपनी प्रतिनिधि सभाकी सर्वसम्मतिसे गुण तथा सेवाकी योग्यताके अनुसार उतने ही सदस्योंको निर्वाचन करके भेजा करेगा।

जो ग्राम जातीय साम्प्रदायिक या पार्टियोंके झगडोंके कारण सर्वसम्मतिसे अपना कोई प्रतिनिधि न चुन सकेगा वह अपने जिलेकी उक्त प्रतिनिधि सभामें तबतक भाग न ले सकेगा, जबतक वह अपने समस्त जातीय, साम्प्रदायिक तथा दलगत झगडोंको सदाके लिये तिलांजलि देकर अपने आपको ग्रामसमाजकी नि:स्वार्थ पवित्र इकाईके रूपमें उपस्थित नहीं कर सकेगा। इस बीचमें ग्रामका वह समाज अपने आपको भाईचारेवाली निर्दोष इकाई बनानेकी चिन्ताके साथ उज्वल समाजका रूप धारण करनेवाली तपस्यामें निमग्न हुआ करेगा। उस ग्राममें इस प्रकारकी योग्यता आनेतक दूसरे ग्रामोंके [illegible] सदृश उस ग्रामका भी प्रतिनिधित्व करते रहेंगे, जिन्हें उन ग्रामोंके समाजोंने सर्वसम्मत प्रतिनिधि चुनकर भेजा होगा। सर्वसम्मतिसे अपने प्रतिनिधि न दे सकनेवाले जिलोंकी भी यही स्थिति रहेगी। इस प्रस्तावित चारित्रिक चुनावपद्धतिसे निर्वाचित प्रतिनिधि लोग शासनव्यवस्थाको अपने नि:स्वार्थ हाथोंमें थामकर जिस उदार योग्यतासे शासनव्यवस्थाका परिचालन करेंगे वह योग्यता उन्हें सीधी ग्रामसमाजोंसे ही प्राप्त होती रहेगी। शासनव्यवस्थामें प्रतिनिधि न होनेपर भी प्रत्येक संगठित ग्रामसमाजको ग्रामसमाजोंकी सदिच्छाओंसे भेजे हुए सर्वसम्मत प्रतिनिधियोंके शासनकी उपयोगिताका लाभ निर्विरोध तथा निर्विघ्न पहुंचता रहेगा। इसलिये सबको पहुंचता रहेगा कि वे सब प्रतिनिधि मानवताके प्रतिनिधि होंगे, जन संख्याके नहीं। इस चारित्रिक चुनाव

पद्धतिको चालू करनेपर प्रत्येक ग्रामसमाजको यह सन्तोष बना रहेगा कि हम ही अपनी राज्यव्यवस्था चला रहे हैं और हम ही वर्तमान राज्यव्यवस्थाके लिये उत्तरदायी हैं। इस पद्धतिको अपनानेसे देशमें राज्यव्यवस्थाके साथ आत्मीयता बढेगी और वह घातक परकीयता हटेगी जो कि विदेशी राजके उच्छिष्ट रूपमें अभीतक अपनी निर्लज्जताके साथमें विद्यमान है और हमारे अभागे देशका पिण्ड छोडकर नहीं जा रही है। इस व्यवस्थाके चल पडनेपर ग्रामसमाजसे प्रत्यक्ष संबन्ध न रखनेवाले किसी भी व्यक्तिको चाहे वह कितना ही बडा समझा हुआ व्यक्ति क्यों न हो, जैसा कि अबतक होता आरहा है, किसी प्रकार अपना प्रतिनिधि बनाकर पीछेसे उसके दुर्व्यवहार और उपेक्षासे पछतानेकी शिकायतोंवाला अवसर सदाके लिये लुप्त हो जायगा।

शासनव्यवस्थाको नौकरशाही न रहने देने और न बनने देनेमें ही राष्ट्रका कल्याण है। शासनव्यवस्थाको नौकरशाही न रहने देकर, उसे प्रजातन्त्र बना डालनेके लिये यह सुझाव इतना स्वाभाविक है कि वर्तमान शासन विधानको परिवर्तित किये बिना तथा वर्तमान शासनव्यवस्थाको पूर्ण रूपसे नष्ट किये बिना ही हमारे इस उपायसे इसे सुधारा जा सकता है। वर्तमान शासनव्यवस्थाको सुधारनेका इससे उत्तम कोई भी उपाय संभव नहीं है। यदि हमारा राष्ट्र पाश्चात्य बुद्धिका भरोसा त्याग कर निरपेक्ष होकर सोचेगा तो वह इसे शीघ्रसे शीघ्र अपनाये बिना नहीं मानेगा। हमारे देशकी जनता इस उपायको काममें लानेसे अगले चुनावमें देशकी कमर तोड डालनेवाले सम्पूर्ण व्ययभारसे तथा इस वयस्कमताधिकार नामवाली भ्रान्त मिथ्या दुष्परिणामी विभाजनशीला कलह पैदा करनेवाली चुनावपद्धतिके विषैले प्रभावसे फैलनेवाले पारस्परिक जातिगत दलगत या साम्प्रदायिक विषैले भेदभावोंसे मुक्त होकर शान्ति, सौमनस्य, भ्रातृभाव तथा एक राष्ट्रताकी शीतल सुखद सांस ले सकेगी। चुनावकी यह पद्धति भारतीय संस्कृतिके अनुसार होगी। इसे स्वीकार कर लेनेपर हमारी शासनव्यवस्थाके प्रजातंत्र बन जानेमें देर भी न लगेगी और संदेह भी न रहेगा।

वोट देनेका उत्तरदायित्व न समझनेवाले छत्तीस करोड वोटरोंसे अन्धाधुन्ध वोट डलवाना यह एक राष्ट्रीय जुआ है। यह एक अनिश्चित लक्ष्यके लिये उद्यम होनेसे ऐसा पाप है, जिसमें हमारा राष्ट्र बुरी तरह सन गया है। इस प्रकारके पापोंका तो स्वार्थपरायण भोगवादी पाश्चात्य सभ्यतामें ही स्थान है। भारतीय सभ्यता तो सुनिश्चित सुपरीक्षित लोगोंको अपनी ओरसे नामोल्लेख (नामजद) करके भेजना जानती है; परन्तु किसी अपरिचित व्यक्तिकी भाग्यपरीक्षाके द्यूतमें सम्मिलित होना नहीं चाहती। वह अपने ग्राम प्रतिनिधियोंको इतिहास कालसे भी पहलेसे चारित्रिक आधारोंसे अपने प्रतिनिधि पदोंपर नियुक्त करती आ रही है। इस चुनावपद्धतिने भारतके ग्रामोंको अभीतक टूटे फूटे रूपमें छोटे छोटे राष्ट्रोंका रूप दे रखा है। आंखोंवाले देखें कि इन छोटे छोटे ग्रामीण राष्ट्रोंमें सदासे प्रजातंत्र पद्धति चली आ रही है। भारतके गावोंमें अब भी चारित्रिक आधारोंसे ग्रामपति या ग्राम प्रमुख निर्धारण करनेकी परिपाटीके ध्वंसावशेष विद्यमान हैं। भारतके संविधानका निर्माण इसी भारतीय चुनावपद्धतिको आधार बनाकर करना चाहिये। इसमें हमारे राष्ट्रका कल्याण है। यह चुनाव भारतीय स्वभावके अनुरूप होनेसे भारतभरमें स्वागत पायगा और देशमें शान्ति तथा सौमनस्यको बुलाकर खडा कर देगा।

[क्रमशः]

समालोचना

' क्या वेदमें इतिहास है ? '

[लेखक- श्री पं. जयदेवशर्माजी विद्यालंकार, प्रकाशक आर्यसाहित्यमण्डल, अजमेर, मूल्य २॥) पृष्ठ संख्या २१६]

विद्वान् संपादक पं. जयदेवशर्माजीकी लिखी यह पुस्तक है। दुर्दैवकी बात यह है कि विद्वान संपादकके पास ऐसे अज्ञानपूर्ण भ्रम बढानेवाले पुस्तक लिखनेके लिये पर्याप्त समय है। इससे कुछ उपयोगी पुस्तक वे लिखते, तो अच्छा होता और उनकी विद्वत्ताका अधिक अच्छा उपयोग भी हो जाता।

यह पुस्तक श्री दिवान रामनाथ कश्यपजीकी प्रेरणासे लिखी गयी है। इनका कुछ द्रव्य भी इसमें लगा होगा। श्री रामनाथजी लिखते हैं—

ओ३म्

२३ मौड रोड, देहली छावनी।

२५-२-५५

पूज्यपाद श्री० पण्डितजी, नमस्ते। ' क्या वेदोंमें इतिहास है ' की एक प्रति सेवामें मैंने भेजी है। ... ... इस पुस्तकपर मुझे ७५०) रु. व्यय करने पडे हैं। वह आप मुझे भेज दें। बडी कृपा और पूरा नयाय होगा। ...०।

चर्ण सेवक

रामनाथ कश्यप

यह पत्र श्री रामनाथजीका है। इस पत्रमें ' नयाय ' पद ' न्याय ' के लिये और ' चर्ण ' पद ' चरण ' के लिये लिखा गया है। जिनको ' न्याय ' और ' नयाय ' तथा ' चरण ' और ' चर्ण ' में फरक नहीं मालूम होता, वे वेद जानने और समझनेकी घमंड करते हैं और जोशमें आकर ७५०) खर्च करके रद्दी पुस्तक प्रकाशित करते हैं।

श्री रामनाथजी बडे वेद प्रेमी हैं इसमें संदेह नहीं है, परन्तु स्वयं संस्कृत भाषा सीखकर वेदका स्वयं अध्ययन करनेके लिये इनके पास समय नहीं है!! ये वेद तो पढेंगे, और अपने तर्क चलाकर जो मनमें आशय बोलेंगे, लिखेंगे, छापेंगे और प्रकाशित भी करेंगे! ऐसे जोशीले भद्र पुरुषोंने बहुत वर्षोंसे आर्यसमाजमें बडा ही उपद्रव मचा रखा है। ऐसे ही जोशीले भद्रपुरुषोंके प्रयत्नसे श्री पं० विश्वबंधुजी शास्त्री आर्यसमाजसे बहिष्कृत हुए थे। पर वे जो उत्तम श्रेष्ठ तथा उपयोगी कार्य इस समय होशियारपुरमें रहकर ' विश्वेश्वरानंद वैदिक संशोधन संस्था ' द्वारा कर रहे हैं, उससे वेदके श्रेष्ठ ज्ञानको निःसंदेह अधिक लाभ होगा। और वैदिकधर्मी उनके सदैव ऋणी रहेंगे। प्रशंसनीय कार्यकर्ताको भी ऐसे उपद्रवकारी लोगोंने व्यर्थ कष्ट दिये हैं!

ऐसे ही भद्रपुरुषोंके प्रयत्नसे पं० भगवद्दत्तजीको डी. ए. वी. कालेज छोडना पडा था, पर ये भी वेदोंकी उत्तम रीतिसे खोज कर रहे हैं, जिससे जनताका लाभ ही हो रहा है।

तात्पर्य यह है कि श्री रामनाथ कश्यप जैसे भद्रपुरुष अपने अत्यधिक जोशके कारण क्या क्या करेंगे उसकी गणना आज कोई कर नहीं सकेगा। आर्यसमाजमें वेदका प्रेम है, पर आर्यसमाज इस समयतक प्रमाणित वेदानुवाद प्रकाशित कर नहीं सका और प्रमाणित अनुवाद प्रकाशित करनेके पूर्व ही श्री रामनाथ कश्यप जैसे उत्साही वीरोंने कुछ अपने वैदिक सिद्धान्त वेद न पढते और न समझते हुए अपने मनसें बनाये हैं। ये अपने सिद्धान्त आर्यसमाजके सिरपर इन्होंने ही लगाये हैं। और जो जोशीले लोग हैं वे इनको लेकर किसीको गिराना हो तो गिराते जाते हैं।

जो अच्छा कार्य करने लगेगा उसकी ऐसी ही दशा ये लोग करते हैं। अजमेरमें श्री पं० आचार्य विद्यानन्द विदेहजी वेदानुवादका अच्छा कार्य कर रहे हैं, पर हम वृत्तपत्रोंमें देखते हैं, कि उनपर भी ये लोग कटाक्षभरे लेख लिखनेका कार्य कर ही रहे हैं!

दुर्दैवकी बात यह है कि ऐसे उपद्रवकारी कार्य करनेवालोंकी सहायता करनेके लिये पं० जयदेव शर्माजी इस समय आगे आये हुए हैं। यहां मुख्य प्रश्न यह है कि ' वेदमें इतिहास है ' या ' नहीं है ' यह एक विवादास्पद प्रश्न आर्यसमाजमें बहुत वर्षोंसे घिसा जा रहा है। वास्तवमें इतना संघर्ष इसपर होनेका कोई प्रयोजन नहीं है। इसका वास्तविक दर्शन ऐसा है। प्रत्येक भाषामें वैसे ही वैदिक भाषामें भी एक ही विषय अनेक प्रकारके भाषाप्रयोगोंके द्वारा कहा जाता है जैसा देखिये—

प्रार्थना — हे राम ! मेरा संरक्षण करनेकी कृपा करो।

आज्ञा — हे राम ! मेरी रक्षा कर।

विधि — राम मेरा संरक्षण करे।

इतिहास — रामने मेरा संरक्षण किया।

निमंत्रण — हे राम ! तुमको मैं अपने संरक्षणके लिये बुलाता हूं।

निषेध — हे राम ! मेरी सुरक्षा न हो ऐसा तुम कुछ भी न करो।

प्रशंसा — राम सबका उत्तम संरक्षण सदा करता रहता है।

आश्चर्य — रामने कैसी उत्तम रीतिसे हमारा संरक्षण किया !

प्रश्न — हे राम ! क्या तू हमारा रक्षण करेगा? अथवा क्यों नहीं करेगा ?

इस तरह भाषाके ये विविध प्रकारके वर्णन करनेके वाक्य-रचनाके प्रकार हैं। इनसे और भी अधिक भाषाके रचनाके भेद हैं, और विविध प्रकारोंसे भाषा प्रयोग होते रहते हैं। इनको देखनेसे पता लगता है कि इनमें इतिहासके सदृश वर्णन करनेका भी एक प्रकार है।

सबका भाव इतना ही है कि 'राम संरक्षक है' 'मानवोंका संरक्षण होना है' और वह 'रामने करना है।' विविध प्रकारके वाक्योंसे इसी एक ही वक्तव्यका भाव प्रकट किया जाता है और इन विविध वाक्योंके द्वारा वर्णन होनेसे एक प्रकारका अपूर्व रस भी उत्पन्न होता है। जिससे मनुष्यके मनमें निश्चित मन्तव्य उतरता है और मानवी जीवनमें वह उतर जानेसे मानवका कल्याण ही होता है।

वेदमें ये सब प्रकारके वाक्यप्रभेद हैं और अनेक देवताओंके वर्णनोंमें ये सब आये हैं, इसीलिये वेद पढते पढते मंत्रोंका अर्थ जानकर उनके अर्थमें मन तल्लीन होता है, मंत्रार्थके दिव्य रससे मन ओतप्रोत भरा जाता है और उससे मन ऊंचा उठता है। इसीका नाम अभ्युदय प्राप्तिके मार्गका अवलंबन करना है।

वेदके जो अभ्यास करनेवाले हैं वे वेदमंत्रोंमें इसी तरहके वाक्य स्तुति, प्रार्थना, उपासना, प्रश्न, आश्चर्य, निषेध, निमन्त्रण, इतिहास आदि रूपोंमें देखते हैं और मुख्य प्राशस्त्य भावका ग्रहण करते हैं और उन्नत होते हैं।

इतिहास और कथा

'इतिहास' अथवा 'कथा' यह एक कहनेका, उपदेश देनेका, विषय समझानेका भाषा प्रकार है। इससे भाषाका सौंदर्य बढता है, उपदेश भी मिलता है और सुगमतासे ज्ञान होता है। इतिहासके रूपमें जहां वर्णन होता है वहीं भूत कालके प्रयोग होते हैं। इन्द्र वृत्रके वर्णनके मन्त्र देखिये। जैसे इतिहास हुए वैसे ही ये वर्णन हैं। देखिये—

"इन्द्रके लिये त्वष्टाने फौलादका वज्र बना दिया, उसकी धारा तीक्ष्ण की गयी। इससे इन्द्रने वृत्रासुरपर प्रहार किया, वृत्रकी माता आगयी, वह वृत्रके ऊपर पडी और अपने वस्त्रोंसे उसने वृत्रको ढांप दिया। इतना होनेपर भी इन्द्रने वज्रसे नीचेसे वृत्रके शतशः टुकडे कर दिये और प्रजापीडक शत्रुका नाश किया और प्रजाका संरक्षण किया।"

पं. जयदेवशर्माजी भी भाषामें इन्द्र-वृत्रके युद्धका वर्णन लिखने बैठें, तो ऐसा ही लिखेंगे। इसका सार यही है कि, "राष्ट्रके शत्रुका नाश हरएक शासक इसी तरह करे।" इन्द्र सूर्य हो या विद्युत् हो, वृत्र मेघ हो या बर्फ हो। यह सब गौण बाते हैं। "शासकने शासितोंकी सुरक्षाके लिये युद्ध किया, शत्रुको परास्त किया और प्रजाकी सुरक्षा की।" इतिहास सदृश वर्णनका मुख्य भाव जो ग्रहण करनेयोग्य है वह यही है।

ये पण्डित लोग मंत्रोंका सरल अर्थ ही करेंगे और लेने योग्य मुख्य भाव लोगोंको बतायेंगे, तो वेदमंत्रोंका अर्थ सहजहीसे पाठकोंके ध्यानमें आसकता है। और बोध प्राप्त करनेकी पद्धति समझानेसे तथा वह बोध जीवनमें ढालने मनुष्य अतिशीघ्र उन्नति प्राप्त कर सकता है। उसके लिये वैदिक शब्दोंको तोडने, खींचने, रगडने, मरोडनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

वेद संपूर्ण जनताको उपदेश देनेके लिये हैं। जनतामें मूर्खोंसे लेकर बडे विद्वानतक सभी प्रकारके लोग होते हैं। उनका मनोरंजन करके उनको उपदेश देना है, इसलिये नाना प्रकारके वाक्य रचनाके प्रभेद वेदमें जान बूझकर रखे हैं।

जोशीले लोगोंका उपद्रव

(१) कई लोग मुझे मिले जो कहने लगे कि वेदमें प्रार्थना ही प्रार्थना है और प्रार्थना करना तो गुलामों और दीनोंका काम है, इसलिये वेद गुलामों और दीनोंके लिये हैं हमारे लिये नहीं है। हम गुलाम नहीं और दीन भी नहीं। इन जैसे लोग प्रार्थना मंत्रोंका अर्थ भी बदलने लगेंगे; क्योंकि उनको प्रार्थना करना पसंद नहीं है।

(२) वेदके इतिहास रूपके मंत्र श्री दीनानाथ कश्यपजीको पसंद नहीं, इसलिये उनके धनको प्राप्त करके पं. जयदेवशर्माजी ठेकेदारीसे उनकी सहायतार्थ इतिहास सदृश वचनोंको तोडने खींचने, मरोडनेको तैयार हुए हैं !!!

(३) प्रिन्सीपाल श्री दीवान चंद्रजीने एक लेख 'आर्य जगत्' पत्रमें प्रकाशित करके यह लिखा था कि "यो असौ आदित्ये पुरुषः सोऽसौ अहं" यह यजु. अ० ४० का मंत्र वेदके अन्य उपदेशके विरुद्ध है! (अर्थात् उनके मतसे प्रतिकूल है) इसलिये यजुर्वेदसे निकाल देनेयोग्य यह मन्त्र है।

(४) उपनिषद् कोश कई विद्वान् बना रहे हैं। इन्होंने 'ईशावास्यं' के पदच्छेद "(१) ईशा। वास्यं; (२) ईशा। अवास्य; (३) ईशा। अव। अस्यं।" किये हैं ऐसा हमने देखा। 'ईशा वास्यं' और 'ईशा अवास्य' इसके "परमेश्वर सर्वव्यापक हैं" और "परमेश्वर सर्वव्यापक नहीं हैं" ऐसे परस्पर विरुद्ध अर्थ हो सकते हैं! क्या ऐसी कृति (विद्वानोंको) करनेयोग्य है?

इस तरह न समझते हुए वेदका संशोधन होने लगा तो वेदमेंसे क्या बाकी रहेगा, इसका पता लगना कठिन है। ये सब विद्वान वेदके भक्त हैं, पर इनकी इस तरहकी भक्तिसे ही वेदके लिये बडा भारी भय है। एक पुरुषकी दो स्त्रियां थी। तरुण पत्नी पतिके सफेद बाल निकालती और वृद्ध स्त्री काले बाल निकालती। अन्तमें पतिके सिरपर बाल रहे नहीं। ऐसी अवस्था वेदकी न बने।

'रामने रावणका पराभव करके रावणके पारतंत्र्यसे आर्योंको मुक्त किया' यह इतिहास है। कइयोंकी संमतिसे यह काल्पनिक ही हैं। यह सच्चा इतिहास हो या कल्पनाकथाकी रचना हो, यह यहां मुख्य बात नहीं है। यहां मुख्य उपदेश यह है कि **"एक आर्य तरुणने दुष्ट सम्राटका साम्राज्य तोडा और अपने देशवासियोंको स्वातंत्र्य दिया।"** यह उपदेश सब तरुणोंके लिये सदा लेनेयोग्य है। यही इस कथासे प्राप्तव्य है, यही इसमें संस्मरणीय ग्राह्य भाग है। फिर 'राम' का अर्थ 'आत्मा' हो या 'सूर्य' हो, तथा 'रावण' का अर्थ 'अज्ञान' हो अथवा 'अंधेरा' हो। ऐसे अर्थ करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। वेदको दुर्बोध तथा जटिल बनानेवाली यह 'पण्डिताई' है। इसीसे तो वेदोंको बचाना चाहिये और वेदको जनसाधारणतक पहुंचाना चाहिये। सुबोध वेदको अत्यंत जटिल करके दुर्बोध सिद्ध करनेवाले पंडितोंकी पंडिताई कितनी भी बडी हो, तथापि वह वेदको थोडे लोगोंका ही दुर्ज्ञेय जटिल समस्यामय ग्रंथ सिद्ध करती है, इसलिये यह ऐसी पंडिताई जितनी वेदोंसे दूर रहे उतनी अच्छी है!

ईश्वरके आन्तरिक स्फुरणसे जो वेद ऋषियोंके अन्तःकरणमें प्रकट हुए उसमें इतिहास सदृश बोध वाक्य नहीं होने चाहिये। ऐसा कहनेका इनको अधिकार ही क्या है? इसका अर्थ यह है कि **"इतिहास सदृश वाक्य रचना करनेकी शिक्षा वेद न देवे।"** इन श्रेष्ठ विद्वानोंका यह कितना धाष्टर्य है? वस्तुतः वेद स्तुति-प्रार्थना-उपासना-ऐतिह्य आदि सभी प्रकारकी काव्य रचना द्वारा संपूर्ण मानव जनताको दिव्य जीवनका उपदेश दे रहा है। मानवी जीवनमें 'ऐतिह्य' के लिये स्थान है। इसीलिये वेद इतिहास सदृश रचना किस तरह करनी चाहिये यह बताता है। वेद [illegible] निकलनेका इतिहास सदृश न बोलते [illegible] इतिहास [illegible] ज्ञान किस तरह हो? या लोग इतिहासकी रचना करनेके उपयोगी ज्ञानसे सदा सर्वदाके लिये वंचित ही रहें? मनुष्यका मस्तिष्क इस तरहकी रचनासे खाली रहे? मनुष्य इस उपयोगी विषयसे सदा वंचित रहें ऐसा वेद नहीं चाहता। इसका कारण इतना ही है कि वेद मानवोंकी सब अंगोंसे उन्नति करनेकी इच्छा करता है, इसीलिये वेदमें ये सब प्रकारके वाक्य हैं जो एक एक प्रकारके काव्यरसको मानवोंमें बढाता है। वेदमें इतिहास सदृश रचना न हो तो एक महत्त्वके साहित्य विभागसे आर्यजाति वंचित रहेगी। पर वेद ऐसा एकांगी उपदेश देना नहीं चाहता। इसीलिये वेदमें केवल प्रार्थना ही प्रार्थना नहीं है, केवल उपासना ही उपासना नहीं, केवल यज्ञ ही यज्ञ नहीं है, केवल इतिहास ही इतिहास नहीं है, पर सब प्रकारके उच्च साहित्यके परम श्रेष्ठ आदर्श वेदमें हैं, इसीलिये **"सर्वज्ञानमयो वेदः"**

कहते हैं। इस वेदको एकांगी बनानेका प्रयत्न करना सर्वथा अनुचित हानिकारक और अयोग्य है और यह साहस अवैदिक भी है।

कथाके रूपसे लिखना 'इतिहास' कहलाता है। यह एक उपदेश करनेका उत्तम साधन है। यह साधन वेदमें न हो ऐसा श्री रामनाथजी कश्यपका दुराग्रह है। यह दुराग्रह उनका तबतक ही रहेगा कि जबतक वे संस्कृत सीखकर वेदको स्वयं पढकर नहीं समझ सकेंगे। उनके इस असमर्थताके कारण वेदके एक मुख्य विभागको तोडने मरोडनेकी पं. जयदेवशर्माजीको क्या आवश्यकता है ?

जिन ग्रंथोंको 'इतिहास' कहते हैं उनमें भी गुह्यज्ञान तथा सनातन धर्मतत्वोंका शाश्वत ज्ञान रहता ही है। उदाहरणके लिये देखिये—

इतिहासकथामें ज्ञानविज्ञान

(१) 'युधिष्ठिरका भाई विजय है।' यह तो इतिहासका, इन्द्रप्रस्थके राजाका– प्राचीन देहलीके सम्राट्का इतिहास है। पर इसमें सनातन तत्व हैं, देखिये। 'युधिष्ठिर' जो युद्धकी भूमिमें स्थिर रहता है, युद्धसे भागता नहीं, अपनी शक्तिसे युद्धभूमिमें सुस्थिर रहता है उसीको 'विजय' प्राप्त होता है। क्या इससे इतिहासका खंडन हुआ, अथवा इतिहासके वर्णनसे सनातन राजकीय तत्त्वज्ञान का खंडन हुआ ? हमारे विचारसे यहां इतिहासके साथ साथ सनातन राजकीय तत्त्वज्ञान भी है।

(२) 'सम्राट् धृतराष्ट्र अन्धा था।' यह इतिहास है। पर प्रायः (धृत-राष्ट्र) जो पाशवी बलसे दूसरोंके राष्ट्रपर अपना कबजा करके उस दूसरोंके राष्ट्रको अपने आधीन करके बैठते हैं, वे पाशवीबलके कारण अन्धे ही होते हैं ? क्या यहां इतिहास और शाश्वत राजकीय तत्वज्ञान संयुक्त नहीं है ? क्या इनमेंसे किसीको नष्ट करना आवश्यक है ? क्या इनमें एक अर्थ दूसरेका नाश कर रहा है ?

(३) 'दशरथका पुत्र राम है।' यह इतिहास है। पर (दश-रथ) दश इंद्रियोंके रथपर संयमसे बैठनेवालेको ही (राम) आनंद मिलता है यह अध्यात्मके तत्वज्ञानका भाव इसमें नहीं है ? क्या यहां एक अर्थसे दूसरे अर्थका खंडन हो रहा है ?

(४) 'रावणकी लंका जलती है यद्यपि उसका पुत्र इन्द्रजीत होता है।' यह इतिहास है। पर इसका अध्यात्मभाव यह है कि क्रूरकर्मा अन्तमें (रावण–रौति) रोता है, उसका वैभव जल जाता है, यद्यपि उसका पुत्र इन्द्रको जीतनेवाला होगा, तथापि वह भी लंकाके साथ विनष्ट होगा। क्या इस इतिहासमें अध्यात्मज्ञान नहीं है ? क्या इसके एक भावको कहने मात्रसे दूसरेका खंडन होता है ?

(५) 'रक्तबीज नामक एक राक्षस था।' इसके एक रक्तबिंदुसे सहस्रों राक्षस रक्त खानेवाले बनते थे। 'कालिकाने इसको खाया' और नष्ट किया। यह कथा पुराणोंमें है। और यह सप्तशतिमें भी है। 'रक्तबीज' राक्षस वह है कि जो अपना बीज रक्तके बिंदुमें रखता है और रक्तका शोषण करता है और 'कालिका' कौन है देखिये—

> कालिका चंडिका भेदे० पटोल शाखा रोमाली
> मांसी काकी शिवासु च। (मेदिनी कोशः)
> धूसरी योगिनी० कालिका। (रमसकोश)
> शरपुंखा ग्रिहारी च कालशांका कालिका मता।

यहां पाठक देखें कि 'कालिका, चंडिका, शिवा, योगिनी' ये कालिका देवीके- काळीके नाम वनस्पतिके वाचक हैं। इसका वर्णन भावप्रकाशमें- "यकृत्प्लीह-गुल्मविषापहा' इतने रोगोंका नाश करनेवाली करके कहा है। रक्तमें रोगबीज रखनेवाले रोग 'हिमज्वर' (मलेरिया) आदि अनेक हैं। इनका नाश यह 'कालिका' वनस्पति करती है। इस औषधी प्रक्रिया, चिकित्सा प्रक्रिया के आधारपर यह कथा रची है। इस कथाका मूल बीज आयुर्वेदीय चिकित्साशास्त्रमें है। यह कथा भी है और शास्त्रीय बात भी है। राक्षस ही रोगकृमी हैं और उनका नाश 'कालिका' वनस्पति करती है। वाङ्मयसी दीखनेवाली यह कथा इस तरह वैद्यकीय ज्ञान दे रही है। यह कितनी आश्चर्यकी बात है !

(६) 'भगवान् श्रीकृष्णके साथ कालयवनने अनेक वर्ष युद्ध किया।' श्रीकृष्ण एक गुहामें गये और अपने उत्तरीयको मुचुकुंदके शरीरपर फेंककर वे वहां छिप कर रहे। इतनेमें कालयवन वहां आया और मुचुकुंदको

लात मारकर जगाया। मुचुकुंदकी दृष्टि कालयवनपर पडी और तत्काल कालयवन नष्ट हो गया, मर गया। यह एक कथा भागवतमें है।

'काल' का अर्थ 'मृत्यु' है। 'कलयाति इति कालः' जो सबको पीस डालता है वह काल मृत्यु ही है। 'यवनः' यौति मिश्रयाति इति यवनः' सबका मिश्रण करता है वह यवन भी मृत्यु ही है। 'काल' और 'यवन' इन दोनोंका भाव महामृत्यु वा मृत्यु ही है।

'मुचाकंद' इस मृत्युको दूर करता है इस विषयमें वैद्यकीय ज्ञानकोशमें देखिये-

पिच्छिला शाल्मली मोचा स्थिरायुः०।
षष्टिवर्षसहस्राणि वने जीवति शाल्मली।

अमरकोश टीका

मोचा वनस्पति 'स्थिरायु' आयुष्यको स्थिर करनेवाली है। यह वनमें ६० हजार वर्षतक जीवित रहती है। यह इतनी दीर्घायुतक जीवित रहती है। इसलिये इस मुचाका कंद मृत्युरूपी कालका नाश करता है, दीर्घायु देता है। मोचा, मुचा वनस्पतिका जो भाग भूमिमें रहता है वह आयुष्यका वर्धन करता है। मुचकद या मुचुकुंद कालयवनका नाश करनेवाला है। क्या यह कथा ऐतिहासिक भी दीखती है, पर वह आयुर्वेदका सिद्धान्त बतानेवाली नहीं है?

अस्तु। कथाएं ऐतिहासिक भी हैं, आध्यात्मिक भी हैं, आयुर्वेदके उपचारदर्शक भी हैं और काल्पनिक भी हैं।

वृत्रकी कथामें ज्वरचिकित्सा

(७) कलकत्तेके स्व० सत्यव्रत सामश्रमीजीने एक स्थानपर ऐसा लिखा है कि 'वेदे वृत्रमिषेण ज्वरचिकित्सा वर्तते' अर्थात् वेदमें इन्द्र और वृत्रके जो युद्ध हैं वे ज्वरचिकित्साके दर्शक हैं। वृत्र शीतज्वर है, उसके बीज रक्तमें रहते हैं और यह ज्वर दूर होनेके समय शरीरसे पसीना बहता है। यही वृत्रवधके समय जलधाराओंका बहना है। इस तरह ठीक रीतिसे श्री सत्यव्रतजीने वृत्रवधके मन्त्रोंसे ज्वरचिकित्सा सिद्ध की है। वृत्र पसीनेको रोकता है, इसलिये ज्वर बढता है, पसीना आनेतक तापमान बढता ही जाता है। जिस समय वृत्रकी शक्ति कम होने लगती है, तब पसीना आना शुरु होता है और अन्तमें अच्छी तरह पसीनेकी धाराएं बहती हैं और रोगी रोगमुक्त होता है। यही इन्द्र वृत्र युद्ध है।

इस तरह अनेक प्रकारके स्पष्टीकरण हैं। इनमें एक सत्य और दूसरा असत्य ऐसा एकदम कहना अयोग्य है। पर मुख्य वृत्तांत "इन्द्रने वज्रसे वृत्रको मारा" ऐसा ही ऐतिहासिक कथाके समान कहा जायगा।

वेदमन्त्रोंमें ऐतिहासिक कथाके समान वर्णन ही अधिक हैं। किसी देवताके मन्त्र देखिये। कथा कहनेके समान ही सर्वत्र वर्णन हैं। शब्दोंके अर्थ अनेक होनेपर भी विषय प्रतिपादन कथाके समान ही रहेगा। शब्दोंके अर्थोंके अनुसार भाव पृथक् पृथक् निकाले जायगे जैसा देखिये —

इन्द्रका वज्र

(८) यह वज्र क्या चीज है। यह फौलादका बना है ऐसा वेदमें कहा है। तथापि 'वज्र' का अर्थ 'हीरा' है और हीरेका भस्म 'वज्र' संज्ञक है यह वैद्यशास्त्रमें प्रसिद्ध है। शरीरमें हीरेका भस्म देनेसे अनेक रक्तजन्य रोग दूर होते हैं, निर्बलता हटती है और अति दीर्घजीवन प्राप्त होता है। इसलिये गीतामें कहा है कि-

आयु-धानां अहं वज्रम्। (गी० १)

'(आयु-धाना) मानवी आयुका धारण करनेवाली [illegible] (वज्र) हीरेका भस्म ईश्वरकी विभूतिके समान अद्भुत कार्य करता है। इस गीताके वचनका यह अर्थ हुआ। वैद्यशास्त्रमें ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र ऐसे हीरेके चार भेद माने हैं। शूद्र हीरेका भस्म दीर्घायु करता है यह आयुर्वेद शास्त्र कहता है।

सर्वसाधारण लोग (आयुधानां) शस्त्रोंमें वज्र नामक शस्त्र ईश्वरकी विभूति है। ऐसा अर्थ मानते हैं पर वज्रका अर्थ बदलनेसे पूर्वोक्त अर्थ होता है और वह शास्त्रानुकूल है। यहां इस शरीरमें इन्द्र वृत्रको किस वज्रसे मारता है यह बात इस तरह स्पष्ट हुई।

इतना सब होनेपर भी 'इन्द्रने वृत्रको मारा' यह इतिहास जैसा वाक्य जैसाका वैसा ही रहा है। इसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। इसलिये वेदका यह मूल अर्थ जैसाका वैसा ही व्याकरणानुसार रखना आवश्यक है। शब्दोंके

अर्थ बदलनेसे तात्पर्य बदलेगा, परंतु मूल वाक्य वैसाका वैसा ही रहेगा।

अब इतने अर्थ बतानेपर 'वृत्र' का केवल 'मेघ' ही अर्थ है ऐसा सिद्ध नहीं हुआ। वृत्र अनेक हैं, इन्द्र भी अनेक हैं और वज्र भी अनेक हैं। किसी एक अर्थसे दूसरा अर्थ मारा नहीं जाता और मूल मंत्रका वाक्य जैसाका वैसा ही रहता है। अत. मूल वाक्यको वैसा ही रखना चाहिये।

पं० जयदेवशर्माजी तथा श्री रामनाथ कश्यपजी यह बात जो यहां बताथी है विशेष विचारपूर्वक देखें और समझें कि वेदके इतिहास सदृश वाक्य तोडने मरोडने योग्य नहीं हैं। वे सुस्थिर रहनेवाले हैं।

वेदके आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, याज्ञिक, राजकीय आदि अनेक अर्थ होते हैं। एक पक्ष दूसरेका खण्डन नहीं करता यह ध्यानमें धरना चाहिये। आजतक याज्ञिकोंने आध्यात्मिकोंका खडन नहीं किया और आध्यात्मिकोंने याज्ञिकोंका विध्वंस नहीं किया। निरुक्तकार इन सब पक्षोंको देते हैं। केवल दुराग्रही लोग ही कहते हैं कि ऐतिहासिकोंका निरुक्तकार खडन करते हैं। ऐसी बात वस्तुत नहीं है। वेदके वचन ही वैसी व्यवस्थासे रचे गये हैं कि जो अनेकविध अर्थोंको धारण कर सकें। इस कारण 'क्या वेदमें इतिहास है' यह प्रश्न ही निरर्थक है। यदि कोई कहेगा कि केवल इतिहास ही वेदमें हैं तो वह असत्य है, वैसा ही केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही है ऐसा कोई कहे तो भी वह पूर्ण सत्य नहीं है। एक एक मंत्र अनेक भाव बताता है। उनको देखना चाहिये और वेदमंत्रोंके अर्थकी गभीरता अनुभवमें लानी चाहिये। जो विद्वान यह कर सकेंगे उनके लिये इतिहास सदृश रचना दु:ख नहीं देगी प्रत्युत वही रचना उनको अर्थगांभीर्य बता देगी।

इतने विवरणसे पाठकोंको पता लगेगा कि पं० जयदेवशर्माजीने जो इस पुस्तकमें लिखा है वह पाठकोंमें भ्रम उत्पन्न करनेवाला है और सच्चे वेदार्थसे जनताको दूर ले जानेवाला है। उनका वेदभाष्य भी ऐसा ही सच्चे वेदार्थसे पाठकोंको दूर ले जानेवाला है। इस विषयमें हम अधिक लिखना नहीं चाहते। परंतु जो संस्कृतज्ञ विद्वान हैं, वे इस भाष्यको कभी प्रमाण मान नहीं सकते। जो संस्कृत नहीं समझते उनमें ही यह भाष्य चल सकता है। यह ऐसा ही होगा। स्वाध्याय जब बढेगा तब सत्यासत्यका निर्णय विद्वान ही करेंगे। पर यह दिन दूर ही है। हम पं. जयदेवशर्माजीको इतना ही कहेंगे कि "शीशेके मकानमें रहनेवालेने दूसरोंके घरोंपर पत्थर फेंकना अच्छा नहीं है।" प० जयदेवशर्माजीका भाष्य प्रमाणित होता, तो वह गुरुकुलोंमें रखा जाता। पर वहां तो इसको स्थान ही नहीं है।

पं० जयदेवशर्माने अपने भाष्यमें 'अश्विनौ' का अर्थ 'स्त्री पुरुष' किया है। अश्विनौ दो देव हैं, दोनों पुरुष हैं। दोनों पुरुष होनेसे वे स्त्रीपुरुष नहीं, यह सिद्ध है। पर पं० जयदेवशर्माजीने उनको स्त्री-पुरुष बनाया है। ये दोनों पुरुष होनेके कारण वे स्त्रीपुरुषवत् कैसा आचरण करें? यदि दोनों पुरुषदेव स्त्रीपुरुषवत् आचरण करनेवाले हों तो उनका देवत्व किस तरह माना जायगा। दो पुरुषोंका स्त्रीपुरुषवत् व्यवहार तो घृणित व्यवहार है। पर प० जयदेवशर्माजीके भाष्यमें गरीब बिचारे अश्विनौ नामक जुडे भाई पुरुषदेव स्त्रीपुरुष बनाये गये हैं। परमेश्वर ही इन भाष्यकारोंसे वेदकी रक्षा करें।

अथर्ववेद भाष्य एक उत्साही पंडितने बहुत वर्ष पूर्व बनारससे प्रकाशित किया था। वेदके सब नाम ईश्वर-वाचक हैं ऐसे मन्तव्यका कैफ उनको चढा था, इस कारण उसने 'मूत्र' पदका भी 'परमेश्वर' अर्थ किया था!! यह पहिला अथर्वभाष्य था। दूसरा भाष्य प० जयदेवशर्माजीका है, जिसमें अश्विनौ नामक जुडे भाई पुरुष देवोंको स्त्री पुरुषवत् व्यवहार करनेके लिये आपने बाधित किया है!! ऐसे भाष्योंसे मनुष्य नीचे ही गिरेगा। इसलिये जनताने इनसे सावधान रहना चाहिये। ठेकेदारीसे किये भाष्य ऐसे ही होंगे।

श्री रामनाथ कश्यपजीने अपने अपसिद्धान्तका समर्थन करनेके लिये पं० जयदेवशर्माजीके भाष्यका उद्धरण करके एक लेख देहलीके 'आर्गनायझर' पत्रमें छापा था। श्री रामनाथजीकी संमतिसे तो उनका विजय हुआ था। पर अन्य विद्वानोंने उस लेखका मूल्य क्या किया था यह भी देखने योग्य है। केवल जोशसे ही वेदका अर्थ नहीं हो सकता। यह श्री रामनाथ जैसे जोशीले वेदप्रेमियोंको कब मालूम होगा?

हमें ऐसे लेख लिखनेकी इच्छा नहीं है। कभी हमने ऐसे लेख लिखे भी नहीं। पर जिस समय भ्रम फैलानेका कार्य कोई करता है, उस समय सत्य प्रकाशित करना आवश्यक ही होता है। इस कारण इच्छा न होनेपर भी यह लेख लिखना पड़ा है।

पं० जयदेवशर्माजीने निम्नलिखित मन्त्रके अर्थके विषयमें बहुत ऊटपटांग लिखा है। वह मन्त्र यह है-

भरताः परिच्छिन्ना अर्भकासः आसन्
वसिष्ठ पुर एता अभवत्।
आदित् विशः अप्रथन्त॥ ऋ० ७।३३।६

'भरत लोग आपसमें झगडनेवाले बालबुद्धिके थे। वसिष्ठ इनका पुरोहित बना। पश्चात् वे यशस्वी हुए।'

मन्त्रके पदोंका यही अर्थ है। ऊटपटांग अर्थ करनेसे पदोंका अर्थ मारा नहीं जाता। इस मन्त्रमें पुरोहितका कर्तव्य बताया है कि वह राष्ट्रकी प्रजाको सघटना करे और उनका अभ्युदय हो ऐसी व्यवस्था करे। इतिहास जैसे वाक्योंका सरल अर्थ करके ही उन वाक्योंका सरल बोध लेना चाहिये। शब्दोंको ताडने मरोडनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

वेदके अन्दर वाक्यरचनाके प्रकार अनेक हैं, उनमें ये मुख्य है- स्तुति, निंदा, संतोष, आक्रोश, पृच्छा, अनुज्ञा, आशा, परिदेवना- (शोक), अभिशाप, प्रश्न, उत्तर, आशीर्वाद, यज्ञ, आक्षेप, अर्थाख्यान, कथा, इतिहास, वियोग, संमेलन, संघटन, अभियोग, युद्ध, सत्थान, वरप्रदान, प्रतिबन्ध, उपदेश, नमस्कार, स्पृहा, विलाप, आनन्द, तर्क, संदेह, निवृत्ती यहां हमने ३३ नाम लिखे हैं और इनके मन्त्रोंके संग्रह हमारे पास लिखे तैयार हैं। पर और भी जीवन विभाग वेदोंमें हैं ऐसा हमारा मत है।

इनमें कई विभाग किसी व्यक्तिको पसद है या नहीं यह प्रश्न गौण है। वेद मानवी जीवनके संपूर्ण पहलुओंसे उपदेश देता है, वह उपदेश मनुष्योंको लेना चाहिये। मनुष्य जिस अवस्थामें रहता है उस अवस्थामें वेद उसको उठानेके लिये सिद्ध है।

इस समय वैदिक धर्मके पंडितोंको उचित है कि वे आजके चालू विषयोंके आदेश वेदसे निकालकर जनताको दें। जनताको कबतक 'मुक्ति' या 'मुक्तिसे पुन जन्म' ऐसे अप्रत्यक्ष विषयोंमें ही रखना है। अस्सी वर्ष यही चर्चा होती रही है। उसी तरहका यह विषय है कि 'वेदमें इतिहास है या नहीं'। जिनको फुरसद है और जिनको दूसरा कुछ भी सूझता नहीं वे ऐसे विषयोंको रटना हो तो रटते रहें। पर स्वराज्य, चुनाव, धर्मसघटना, परकीयोंका आक्रमण, राज्यशासन, शिक्षा, विश्वशांति, दीर्घायु आदि अनेक विषय हैं। जिनकी वेदमन्त्रोंमें खोज करके सायुक्त लेख पण्डित लोग जनताको पढनेके लिये दें। जिनके पास धन है उनका धन ऐसे पुस्तक प्रकाशनके लिये खर्च हो। जिनमें लेखनकी कला है उनकी वह कला इस लेखोंमें लगे।

जनताको मालूम हो कि वेद आजके उपयोगकी चीजें दे रहा है। प्रतिदिन वेदपाठ हो ऐसे ग्रन्थ रचे जाय। वेद दैनदिनीय व्यवहारमें ढाला जाय ऐसा कुछ उद्योग हो।

'इतिहास' से घबरानेवाले यह जान लें कि इतिहासमें "शाश्वत इतिहास" भी होता है। भारतके वैदिक मन्त्रोंमें और इतिहास पुराणोंमें यह "शाश्वत इतिहास" है यह बात इन विद्वानोंके ध्यानमें प्रथम आनी चाहिये। Permanant History of Bharat Varsh यह अंग्रेजी पुस्तक ये लोग पढें और समझें। भारतवर्षके ऋषि ही "शाश्वत इतिहास" लिख सकते थे और वेदसे ही उनको यह शाश्वत इतिहासका ज्ञान मिला था। वेदके भक्तोंको इस महत्वकी बातकी ओर दुर्लक्ष्य करना योग्य नहीं है।

ग्रीक लोग 'अशाश्वत इतिहास' - मानवी क्षणभंगुर स्थितिका इतिहास - लिखते थे। वही इतिहास इस समय चालू है, पर भारतवर्षके ऋषि "शाश्वत और सनातन इतिहास' लिखनेमें प्रवीण थे। यह कला जगत्‌ने अभी सीखनी है।

दिव्य जीवन

[श्री अरविंद]

अध्याय १७

[गताङ्कसे आगे]

किन्तु सक्रिय रूपमें वे बृहत् सत्यमें प्रतिष्ठित हैं और उससे ही उद्भूत होते हैं, उस सत्य ऋतको अग्नि या किसी दूसरे नामसे कहा जाता है, वह एक है जो कि सर्व हो गया है; साथ ही वह समस्त देवोंको अपनेमें इस प्रकार धारण करता है जैसे चक्रकी नाभि अरोंको धारण करती है, वह एकमेव है जो सबको अपनेमें धारण करता है। इसके साथ साथ अग्निरूपमें उसे स्वतंत्र देव भी कहा गया है, वह ऐसा देव है जो कि दूसरे समस्त देवोंकी सहायता करता है, वह शक्ति और ज्ञानमें सबसे श्रेष्ठ है, परन्तु विश्वगत स्थितिमें उनसे हीन है और उनके द्वारा दूत, पुरोहित या कर्म-कर्ताके रूपमें नियुक्त किया जाता है, वह जगत्का स्रष्टा और पिता है किन्तु साथ ही हमारे कर्मोंसे उत्पन्न हुआ पुत्र भी है, दूसरे शब्दोंमें वह आदि कारण और अभिव्यक्त अन्तःस्थ आत्मा या ब्रह्म है, सर्वान्तर्यामी एकमेव तत्त्व है।

दिव्य अन्तरात्माके ईश्वर या अपने परमात्माके साथ और अपने दूसरे रूपवाले दूसरे आत्माओंके साथ समस्त सबंध इस व्यापक आत्मज्ञानके द्वारा नियत होंगे। ये संबध सत्ताके, चेतना और ज्ञानके, इच्छा और शक्तिके, प्रेम और आनन्दके होंगे। इन संबधोंमें विविध रूप धारण करनेकी अनन्त शक्यता होगी; इस कारण ये एक अन्तरात्माके दूसरे अन्तरात्माके साथ किसी भी ऐसे संभव संबंधका निराकरण नहीं करेंगे जो कि हरप्रकारके भेदात्मक प्रपंचमें ऐक्यके अविच्छेद्य भावकी रक्षाके साथ संगत होगा। इस प्रकार उपयोगके अपने संबंधोंमें दिव्य अन्तरात्मा अपनेमें सम्पूर्ण अपने ही अनुभवका आनन्द लेगा। वह दूसरे आत्माओंके साथ संबंध विषयक अपने समस्त अनुभवका भी आनन्द लेगा, वह यहां वह अनुभव करेगा कि दूसरे आत्माओंसे उसका यह संबध समागमरूप है और वे (दूसरे आत्मा) विश्वमें विविध प्रकारकी लीलाके लिये दूसरे रूपोंमें सृष्ट किये गये हैं। साथ ही वह अपने दूसरे आत्माओंके भी अनुभवोंका इस प्रकार आनन्द लेगा मानो वे उसके अपने ही आत्मा हों- जैसा कि वे यथार्थमें हैं। और उसमें इस प्रकार अनुभव करनेकी पूरी सामर्थ्य होगी; कारण वह अपने अनुभवोंको जानेगा, दूसरोंके साथ अपने संबंधोंको जानेगा, दूसरोंके अनुभवोंको जानेगा और अपने साथ दूसरोंके संबधोंको जानेगा, वह इन सबमें यह अनुभव करेगा कि ये उस एकमेव तत्त्व, परमात्मा, उसके अपने आत्माके आनन्द विलास हैं; वह अनुभव करेगा कि इनमें जो भेद हैं वह इस कारण कि वह एकतत्व, उसका अपना आत्मा, परमात्मा अपनी सत्ताके इन समस्त रूपोंमें पृथक् पृथक् निवास करता है, किन्तु इस भेदमें भी वह एक ही है। चूंकि यह ऐक्य उसके सम्पूर्ण अनुभवका आधार है, इसलिये वह हमारी विभक्त चेतनाके असामंजस्योंसे, जो चेतना कि अज्ञान और पृथक्कारी अहंकारके द्वारा विभक्त हुई है, मुक्त होगा। ये सब आत्मायें और इनके संबंध एक दूसरेके हाथोंमें सचेतनतया क्रीडा करेंगे; वे एक सनातन संगीतके असंख्य स्वरोंके रूपमें एक दूसरेसे पृथक् होंगे और उसमें घुलमिल जायंगे।

और यही नियम उसकी सत्ता, ज्ञान और इच्छाके दूसरे आत्माओंकी सत्ता, ज्ञान और इच्छाके साथ संबंधोंके विषयमें प्रयुक्त होगा। कारण उसके समस्त अनुभव और आनन्द सत्ताकी आनन्दमयी सचेतन शक्तिकी लीलारूप होंगे, इस लीलामें ऐक्यके इस सत्यके आधीन इच्छाका ज्ञानके साथ संघर्ष नहीं हो सकेगा और न इनमेंसे किसीका आनन्दके साथ संघर्ष होगा। यहां एक अन्तरात्माके ज्ञान, इच्छा

और आनन्द दूसरे अन्तरात्माके ज्ञान, इच्छा और आनन्दके साथ भी संघर्ष नहीं करेंगे; कारण, उन अन्तरात्माओंको एक दूसरेके साथ ऐक्यका ज्ञान होगा, इसलिये हमारी विभक्त सत्तामें जो संघर्ष और असामंजस्य है वह उन अन्तरात्माओंमें एक अनन्त संगीतके विभिन्न स्वरोंका मिलन, मंथन और परस्पर लीलारूप होगा।

अपने परमात्मा, ईश्वरके साथ अपने संबंधोंमें दिव्य अन्तरात्मा अपनी सत्ताके साथ परात्पर ब्रह्म और विश्वके एकत्वका यह भाव रखेगा। वह अपने साथ ईश्वरके उस एकत्वका उपभोग स्वयं अपने व्यक्तित्वमें करेगा और अपने दूसरे आत्माओंके साथ उसके एकत्वका उपभोग विश्वमें करेगा। उसके ज्ञानके संबंध दिव्य सर्वज्ञताकी लीला होंगे, कारण ईश्वर ज्ञानस्वरूप है (प्रज्ञानं ब्रह्म); और हममें जो अज्ञान है वह वहां सचेतन आत्म-संवितकी विश्रान्तिमें ज्ञानका पीछे रोक लेना होगा, जिससे कि उस आत्मसंवित्के कुछ रूप ज्योतिकी क्रियाके लिये सम्मुख लाये जा सकें। उसकी इच्छाके संबंध वहां दिव्य सर्वशक्तिमत्ताकी लीला होंगे, कारण ईश्वर शक्ति और इच्छा है; हममें जो दुर्बलता और असामर्थ्य है वह वहां शान्त निश्चल समाहित शक्तिमें इच्छाका पीछे रोक लेना होगा, जिससे कि दिव्य चेतन-शक्तिके कुछ रूप शक्तिके रूपमें सम्मुख आ सकें।

उसके प्रेम और आनन्दके संबंध दिव्य आनन्दकी लीला होंगे, कारण ईश्वर प्रेम और आनन्द है; हममें जो प्रेम और आनन्दका प्रतिषेध प्रतिद्वन्द्व (घृणा, दुःख) है वह वहां आनन्दके निश्चल सागरमें हर्षका पीछे रोक लेना होगा, जिससे कि दिव्य सायुज्य और उपभोगके कुछ रूप आनन्दकी लहरोंके सक्रिय उभारके रूपमें सम्मुख आसकें। इसी प्रकार उसका सम्पूर्ण भूतभाव इन क्रियाओंके प्रत्युत्तर स्वरूप दिव्य सत्ताका निर्माण होगा; हमारे साथ जो अन्त, मृत्यु और विनाश है वह सच्चिदानन्दकी सनातन सत्तामें हर्षमयी सृष्टी मायाका केवल विश्राम, वैविध्य या पीछे रोक लेना होगा। इसके साथ साथ यह एकत्व दिव्य अन्तरात्माके ईश्वरके साथ, उसके अपने परम आत्माके साथ अन संबंधोंका निराकरण नहीं करेगा जो कि भेद-जन्य हर्षके आधारपर प्रतिष्ठित हैं, जो कि दूसरे रूपमें ऐक्यका उपभोग करनेके लिये उसे ऐक्यसे पृथक् करते हैं। यह एकत्व ईश्वरके साथ आनन्द-उपभोगके उन श्रेष्ठ रूपोंमेंसे किसीकी भी संभावनाका विनाश नहीं करेगा जो कि भगवद्भक्तके भगवान्का आलिंगन करनेमें उच्चतम आनन्दरूप हैं।

परन्तु वे क्या अवस्थायें होंगी जिनमें और जिनके द्वारा दिव्य अन्तरात्माके जीवनका यह स्वभाव मूर्त रूप धारण करेगा? संबंधात्मक जो भी अनुभव होता है वह सब सत्ताकी कुछ शक्तियोंके द्वारा प्रगति करता है; ये शक्तियां एक विशेष उपकरणके द्वारा क्रिया करती हैं जिसे कि हम गुण, क्रिया, कार्य शक्ति नामसे पुकारते हैं। उदाहरण-स्वरूप, मन प्राणीकी भूमिकाके अनुसार अपने आपको मानस-शक्तिके विविध रूपोंमें जैसे निर्णय, निरीक्षण, स्मृति सहानुभूति प्रकट करता है; उसी प्रकार ऋत्-चित् या अतिमन भी अतिमानस सत्ताके अनुरूप शक्तियों, कार्य-शक्तियों और क्रियाओंके द्वारा एक अन्तरात्माके दूसरे अन्तरात्माके साथ संबंधोंका निर्माण करेगा; कारण इसके बिना भेदमयी लीला नहीं हो सकेगी। ये क्रियायें क्या हैं इसे हम उस समय देखेंगे जब कि हम दिव्य जीवनकी मनोवैज्ञानिक अवस्थाओंपर विचार करेंगे। इस समय तो हम दिव्य जीवनके केवल तात्विक आधारोंका, उसके मूल स्वभाव और तत्त्वोंका विचार कर रहे हैं।

इस समय तो हमारे लिये यह कहना पर्याप्त है कि चेतनामें पृथक्कारी अहंकार और परिणामजनक विभागका अभाव या विनाश दिव्य जीवनकी एक मूलभूत अवस्था है, और इसलिये हममें उनकी उपस्थिति ही हमारी मृत्यु और भगवान्से हमारे पतनका कारण है। यह हमारा आदि पाप है; अथवा अधिक दार्शनिक भाषामें इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह आत्माका सत्य और ऋत्से, अपने एकत्व, पूर्णत्व और सामंजस्यसे च्युत होना है; आत्माकी अज्ञानमें महान् क्लिष्टताके लिये इस च्युतिका होना आवश्यक था; अज्ञानमें यह क्लिष्टता विश्वमें अन्तरात्माका साहसिक कर्म है और इससे ही हमारे दुःखका और मानवमें उच्च अमीरसका जन्म हुआ है।

[अध्याय १८]
मन और अतिमन

मनो ब्रह्मेति व्यजानात्। (तैत्तिरीयोपनिषद् ३।४)
उसने जाना कि मन ब्रह्म है।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्॥
गी० १३।१७

अविभक्त होता हुआ भी भूतोंमें विभक्त जैसा।

अभीतक हम जिस भावको बनानेका प्रयास करते रहे हैं वह अतिमानस जीवनके केवल मूल-स्वरूपका है, दिव्य अन्तरात्मा इस अतिमानस जीवनको सच्चिदानन्दकी सत्तामें सुरक्षित रूपमें धारण करता है, परन्तु मानव आत्माको इसे सच्चिदानन्दके इस देहमें, जो कि यहां मानसिक और दैहिक जीवनके रूपमें बना हुआ है, अभिव्यक्त करना है, परन्तु अभीतक इस अतिमानस सत्ताका जहांतक हम अवलोकन कर पाये हैं उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इसका हमारे जीवनसे, जैसा कि हम उसे जानते हैं, कुछ भी संबंध या सादृश्य नहीं है; हमारा यह जीवन हमारी साधारण सत्ताके दो रूपोंके, मन और शरीररूपी दो आकाशों (लोकों) के मध्यमें क्रिया करता है। दूसरी ओर अतिमानस जीवन ऐसा प्रतीत होता है कि वह सत्ताकी ऐसी अवस्था, चेतनाकी ऐसी अवस्था, सक्रिय संबंध और परस्पर उपभोगकी ऐसी अवस्था है, जिसे कि देहरहित अन्तरात्मायें ऐसे लोकमें धारण और अनुभव कर सकते हैं जो (लोक) कि दैहिकरूपोंसे रहित है; यह ऐसा लोक है कि जिसमें अन्तरात्माओंका भेद तो हो गया है किन्तु शरीरोंका भेद नहीं हुआ है; यह लोक सक्रिय और हर्षयुक्त अनन्तों (अनन्त आत्माओं) का लोक है किन्तु रूप बद्ध (शरीरस्थ) आत्माओंका लोक नहीं है। इसलिये यह सन्देह होना युक्तियुक्त है कि इस शारीरिक रूपकी परिच्छिन्नता, रूपबद्ध (शरीरबद्ध) मनकी परिच्छिन्नता और रूपबद्ध (शरीरबद्ध) शक्तिकी परिच्छिन्नताको साथमें रखते हुए- जैसा कि हम वर्तमान-समयमें अपने आपको समझते हैं— क्या वैसा दिव्य जीवन संभव होगा?

वास्तवमें, हमने उस परम अनन्त सत्, चित्-शक्ति और आनन्दमयके विषयमें कुछ अवधारणा बनानेका प्रयास किया है जिससे कि हमारा जगत् सृष्ट हुआ है और जिसका कि हमारा मन एक विकृत रूप है। हमने अपने सामने यह भाव लानेका प्रयत्न किया है कि यह दिव्य माया, यह सत्य-चेतना (ऋत्-चित्), यह सत्य-संकल्प क्या हो सकता है, जिसके द्वारा परात्पर और वैश्व पुरुषकी चेतन-शक्ति विश्व और उसकी व्यवस्थाकी, उसकी सत्ताके अभिव्यक्त आनन्दके विश्वकी कल्पना करती है, इसका निर्माण और शासन करती है। परन्तु हमने इन चार महान् और दिव्य तत्त्वोंके दूसरे तीन तत्त्वों (मन, प्राण और शरीर) के साथ, केवल जिनसे कि हमारा मानव अनुभव परिचित है, सम्बन्धोंका अध्ययन नहीं किया है।

हमने इस दूसरी और आपाततः अदिव्य मायाकी, जो कि हमारे समस्त प्रयास और दुःखका मूल है, समीक्षा नहीं की है; हमने यह नहीं देखा है कि यह अदिव्य माया उस दिव्य परमार्थ तत्त्वसे या दिव्य मायासे ठीक ठीक किस प्रकार उद्भूत होती है। और जबतक हम यह न करलें, जबतक कि हम उन खोये हुए सूत्रोंको न बुनलें जो कि इन्हें जोडनेवाले हैं तबतक हमारा जगत् हमारे लिये अव्याख्यात ही रहेगा; तबतक उस उच्च सत्ता और इस निम्न जीवनके बीच एकीकरण होनेमें सन्देह बने रहनेका अवकाश रहता है। हम जानते हैं कि हमारा जगत् सच्चिदानन्दसे उत्पन्न हुआ है और उसकी सत्तामें अपना अस्तित्व रखता है; हम यह कल्पना करते हैं कि वह भोक्ता और ज्ञाता, ईश्वर और आत्मा रूपसे इसमें निवास करता है; हम यह देख चुके हैं कि हमारे संवेदन, मन, शक्ति और सत्ताके द्विविध रूप × उस सच्चिदानन्दके आनन्द, उसकी चेतन शक्ति, उसकी दिव्य सत्ताके केवल व्यक्त रूप ही हो सकते हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि सच्चिदानन्दका जो यथार्थ स्वरूप और परभाव है उसके विपरीत ये हमारे द्विविध रूप हैं; वे वस्तुतः इसके इतने अधिक विपरीत जान

× सुख दुःख, ज्ञान अज्ञान, बल दुर्बलता, जन्म मरण।

पड़ते हैं कि हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जबतक हम इन विपरीतोंके कारणमें, सत्ताके निम्न कोटिके त्रिविध तत्वों (मन प्राण, शरीर) में रहते हैं तबतक दिव्य जीवनको प्राप्त नहीं कर सकते ।

उस दिव्य जीवनके लिये या तो हमें इस निम्न सत्ताको उस उच्च स्थितिमें समुन्नत करना चाहिये अथवा इस शरीरका उस शुद्ध सत्ताके साथ इस प्राणका चित्‌शक्तिकी उस शुद्ध अवस्थाके साथ, संवेदन और मानस ज्ञानका उस शुद्ध आनन्द और ज्ञानके साथ विनिमय करना चाहिये जो कि आध्यात्मिक परमार्थ तत्वके सत्यमें रहते हैं । और क्या इसका यह अवश्यम्भावी अर्थ नहीं है कि हम पार्थिव या परिसीमित मानवसत्ताका किसी ऐसी वस्तुके लिये परित्याग कर रहे हैं जो इसके विपरीत है; वह वस्तु या तो आत्माकी कोई शुद्ध अवस्था है, अथवा वस्तुओंके सत्यका कोई लोक है– यदि ऐसा कुछ विद्यमान है तो, अथवा वह दिव्य आनन्द, दिव्य शक्ति, दिव्य सत्ताके कोई दूसरे लोक हैं— यदि ऐसे लोक विद्यमान हैं तो ? ऐसी अवस्थामें मनुष्यकी पूर्णता मानव जीवनमें नहीं है अपितु कहीं अन्यत्र है, उसके पार्थिव विकासका शिखर, विलीन होते हुए मनका केवल एक ऐसा पतला सिरा हो सकता है जहांसे कि वह या तो निराकार सत्‌में, अथवा ऐसे लोकोंमें जो देहधारी मनकी पहुंचसे परे हैं, लम्बी कूद लगाता है ।

परन्तु यथार्थमें जिसे हम अदिव्य कहते हैं वह सब केवल चार दिव्य तत्वोंका ही कर्म हो सकता है; उनका ऐसा कर्म हो सकता है जो कि इस रूपवान् विश्वकी सृष्टि करनेके लिये आवश्यक था। वे रूप दिव्य सत्ता, चित्‌शक्ति और आनन्दमें ही सृष्ट हुए हैं, कहीं बाहर नहीं, सत्य-संकल्पमें और उसके अङ्गरूपमें, कहीं बाहर नहीं। अतः यह माननेका कोई कारण नहीं है कि रूपवान् जगत्‌में उच्च दिव्य चेतनाकी कोई यथार्थ क्रीडा नहीं हो सकती, यह भी नहीं माना जा सकता कि वे रूप और उनके साक्षात् आधार—मानसिक चेतना, प्राण-शक्ति और रूपवान् द्रव्य-अवश्यभावी रूपसे उसे विकृत ही करें जिसे कि वे व्यक्त करते हैं । यह संभव और संभवतर है कि मन, शरीर और प्राण अपने शुद्ध रूपमें स्वयं दिव्य सत्यमें ही विद्यमान हों, और वास्तवमें वे वहांपर शक्तिकी अप्रधान क्रियाओंके रूपमें और ऐसे पूर्ण उपकरणके अङ्गके रूपमें, जिसके द्वारा कि वह परा शक्ति सर्वदा क्रिया करती है, विद्यमान हैं ।

अतः मन, प्राण और शरीरमें अपने दिव्य भावको प्राप्त करनेकी शक्ति होनी चाहिये, भौतिक विज्ञान उनके पार्थिव विकासके केवल एक चक्र (जीवन) का प्रकाश करता है, इस चक्र (जीवन) के स्वल्पकालमें जीवित शरीरमें इन तीन तत्वोंके रूप और क्रियायें इनकी सम्पूर्ण शक्य क्रियाओंको अभिव्यक्त कर दें यह आवश्यक नहीं है । उनकी जो वर्तमान प्रकारकी क्रियायें हैं वे ऐसी इस कारण होती हैं कि जिस दिव्य सत्यसे इनकी उत्पत्ति हुई है उससे ये किसी तरह चेतनामें पृथक् हो गये हैं । यदि भगवान्‌की मनुष्यमें विस्तृत होती हुई शक्तिके द्वारा इस पार्थक्यको एक बार दूर कर दिया जाय तो उनकी वर्तमान क्रिया उस शुद्धतर क्रियाके रूपमें, जिसे कि वे सत्य-चेतना (ऋत्-चित्) में धारण करते हैं, एक परम विकास और उन्नतिके द्वारा भली भांति परिवर्तित हो सकती है और निश्चय ही स्वाभाविक रूपमें परिवर्तित होगी ।

ऐसी अवस्थामें मानव मन और देहमें दिव्य चेतनाको अभिव्यक्त करना और उसे स्थिर रखना संभव होगा; इसके साथ साथ वह दिव्य चेतना अपनी विजयोंको बढाती हुई, अन्तमें, मन, प्राण और शरीरका रूपान्तर करके इन्हें अपने सनातन सत्यका एक अधिक पूर्ण प्रतिरूप बना देगी और न केवल अन्तरात्मामें अपितु भौतिक द्रव्य (शरीर) में पृथ्वीपर अपने स्वर्गके साम्राज्यको उपलब्ध करेगी । इन विजयोंमेंसे प्रथम, आन्तरिक कुछ मनुष्योंने, सम्भवतः अनेकोंने पृथ्वीपर स्वल्प या अधिक मात्रामें अवश्य प्राप्त की है । दूसरी, बाहरी विजय अतीत कल्पोंमें लेशमात्र भी प्राप्त नहीं की गई और अभीतक पार्थिव प्रकृतिकी अव-चेतन स्मृतिमें अवरुद्ध पडी हुई है; वह भावी पुत्रोंके लिये अपने ढंगकी पहली होगी; इसे ईश्वरकी मनुष्यमें आनेवाली सार्विजय सिद्धिके रूपमें लक्ष्य बनाया जा सकता है । यह आवश्यक नहीं है कि पार्थिव जीवन सदाके लिये अवश्य-मेव अर्ध-सुखमय और अर्ध-दु:खमय प्रयासका चक्र बना रहे । इस सिद्धिको लक्ष्य बनाया जा सकता है और ईश्वरके ऐश्वर्य और आनन्द-हर्षको पृथ्वीपर अभिव्यक्त किया जा सकता है । [क्रमश:]

*

भाषा मीमांसा

[लेखक— श्री. पं. शिवकुमार महेशदत्त शुक्ल, विद्याभूषण]

संस्कृत-प्राकृत—पाली

वैदिकभाषासे संस्कृत और प्राकृत-पाली आदि भाषायें बनती गईं। बुद्धयुगमें भगवान् बुद्धने सर्व साधारणको समझानेके लिये जिस भाषामें उपदेश दिये, उसी भाषाका नाम आगे चलकर पाली भाषा हो गया।

प्राकृत भाषा, जो बुद्ध बोलते थे उसीका नाम लोगोंने पाली रख दिया। 'एतानि भन्ते ? धम्म पलियायानि इच्छामि ... ' इस वाक्यमें 'पलियाय' आया है, पलि यह परि उपसर्गका रूप है, आदिको दीर्घ करके पाली हो गया है। 'दीर्घनिकायपालि' 'उदानपालि' 'पाचित्तिय पालि' आदि वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि ये ग्रन्थ बुद्ध-वचन हैं।

पा-पालेति रक्खतीति पाली = पंक्ति, यह अर्थ भी कुछ विद्वानोंने किया है। कुछ लोगोंका ऐसा भी विचार है कि- पाटलीपुत्र अर्थात् 'पटना' की यह भाषा थी, कुछ कालतक इसे पाटलि भाषा कहा जाता था, पीछे बिगाड़कर ट हटा दिया गया और इस प्रकार पाली भाषा नाम हो गया।

पल्लि नाम ग्रामका है, ग्रामीण भाषा होनेसे इसे पाली कहा गया, इत्यादि अन्य कल्पनायें हैं; परन्तु हमें तो यह बताना है कि, इसका कलेवर बहुत अंशोंमें संस्कृतका ही है। ब्रह्मप्रदेश, सीलोन आदि दूर दूरतक इसका फैलाव है।

संस्कृत	पाली
तुष्टः	तुट्ठो
स्तम्भः	थम्भो
हस्ती	हत्थी
दुस्तरं	दुत्तरं
दक्षिणः	दक्खिणो
मोक्षः	मोक्खो
समुद्रः	समुद्दो
कार्य्यं	करियं

इत्यादि अनेकों उदाहरण हैं। पालीभाषामें भी बराबर परिवर्तन होते गये। अशोक कालीन पालीका रूप अति विकृत हो गया। जैन साहित्यके ग्रन्थ अर्धमागधी पालीमें लिखे गये हैं। जैनसूत्र उदाहरणार्थ देखिये—

मूल जैन सूत्र—

१ सुयं मे आउसं ? तेण भगवया एवं अक्खायं। इहं एगेसिं नो सन्ना भवति। एवं एगेसिं नो नातं भवति। तं जहाः- "के अहं आसी"। के वा इओ चुए पेच्चा भविस्सामि॥"

इसीकी छाया पालीमें--

१ सुतं मे आवुसो ? तेन भगवता एवं अक्खातं, इह एकेसं नो सञ्ञा भवति। एवं एकेसं नो जातं भवति। तं यथाः- "को अहं आसिं ? को वा इतो चुतो पेच्चा भविस्सामि॥"

प्राकृत-पाली आदि भाषाओंका मूल तो सुस्पष्ट ही संस्कृत है, इसमें स्वल्प ही परिवर्तन हो सका है। इन विभिन्नताओंका मूल कारण हम पीछे बता चुके हैं कि ज्यों ज्यों वेदाध्ययनमें आर्योंकी शिथिलता बढ़ती गई, उतनी उतनी अपभ्रंशता बढ़ती गई। ये जहाँ जहाँ फैलते गये, अपने उच्चारणोंको सरल करते ही गये, क्लिष्टतासे डरते गये। इस प्रकार कई नई नई भाषाओंका प्रादुर्भाव होता चला गया। किन्तु सबपर वैदिक भाषाकी छाया बराबर पड़ती गई, क्योंकि मूलमें तो आर्योंकी ही भाषा थी।

संस्कृत और पाली व्याकरण

जिस तरह ऐन्द्र, चान्द्र, पाणिनीय, सारस्वत आदि संस्कृत भाषाके सर्वाङ्ग व्याकरण हैं, वैसे ही कच्चान, मोग्गल्लान, सद्दनीति आदि पाली भाषाके सर्वाङ्ग व्याकरण हैं। संज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश, तथा अधिकार- इन छः प्रकारके सूत्रोंसे जैसे संस्कृत व्याकरण रचे गये हैं, वैसे ही पाली-व्याकरण भी हैं।

पाली सरल तथा उस समयकी बोलचालकी भाषा होनेके कारण, उसके व्याकरणमें उतने अधिक सूत्र नहीं हैं जितने संस्कृत व्याकरणमें। पली भाषाके कच्चान व्याकरणमें ६७५ सूत्र, मोग्गलानमें ८१७ सूत्र, तथा सद्दनीतिमें १३९० सूत्र हैं।

जैसे पाणिनीय व्याकरणमें अपवाद बतानेके लिये बहुलं छन्दसि का प्रयोग किया गया है वैसे पाली व्याकरणमें भी क्वचि बहुलं वा से अधिक काम लिया है। भगवान् बुद्धके प्रधान शिष्य कच्चानने भी एक व्याकरण बनाया था। किन्तु वह नहीं मिलता। बोधिसत्त और सब गुणाकर नामके भी दो व्याकरण थे, जो आजकल उपलब्ध नहीं हैं। प्राचीन पालीका कच्चान व्याकरण शायद लंकामें ही लिखा गया था। यह व्याकरण बड़े सरल ढंगसे लिखा गया है। ऐसे मोग्गलान व्याकरण आजसे प्रायः साढे सात सौ वर्ष पहले प्रथम पराक्रम बाहुके समय लंकामें लिखा गया था।

व्याकरणकर्ता मोग्गलान महाथेर अपने समयके संघराज थे। वे अनुरूपापुरके थूपाराम बिहारमें रहते थे। वहीं यह व्याकरण लिखा गया। मोग्गलानकी गिनती पाणिनीय, चान्द्र, पतञ्जलि आदि महावैयाकरणोंमें हैं। पालि व्याकरणोंमें मोग्गलान व्याकरण पूर्णता तथा गम्भीरतामें श्रेष्ठ है।

सरलताकी प्रगति

भाषाकी कठिनता और क्लिष्ट उच्चारणोंको सरल करनेकी प्रवृत्ति कहांतक अपनी खींचातानी करती है यहांपर कुछ नमूने दिखाये जाते हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि आर्य सेमिटिक और तुरानी भाषायें किस प्रकारसे संस्कृत भाषाके विस्तृत और क्लिष्ट उच्चारणोंको छोड़कर संकुचित और सरल उच्चारणोंकी ओर गई हैं—

लुप्ताक्षर	संस्कृतरूप	अपभ्रंश	हिन्दी
ऋ	ऋत	राइट	सत्य
घ	मेघ	मेह	बादल
च	चरक	सरक	वैद्यकका ग्रन्थ
,,	चन्द्रगुप्त	सेन्ड्राकोटस	नाम
,,	वनचर	बनजर	जमीन
छ	छाया	साया	परछाई
ट	विष्टर	बिस्तर	बिछौना
,,	उष्ट्र	उश्तर	ऊँट
थ	स्थान	स्तान	जगह
द	द्वौ	ट्वौ (Two)	दो
,,	यक्ष्म	जख्म	घाव
,,	उक्ष	ऑक्स	बैल
,,	वक्ष	बॉक्स	सन्दूक

समस्त आर्य भाषाओंमें ऋ, ष, और टवर्गका संकोच दिखलाई पडता है। जैसे अंगुष्ठका अंगुश्त, शृगाल का शगाल, कृमि का किरम, कर्ष का कश, क्षीर का शीर, और ऋत का राइट। सेमिटिक भाषाओंमें भी संकोच दिखलाई पडता है। जैसे- षष्ठ का सित्ता, सप्त का सब्बा भ्रम का वहम और द्यौ का यो आदि। इसी तरह तुरानी भाषाओंमें भी संकोच हुआ है, जैसे- स्थानका तान, उक्षका ओउशी, केशकाके अम्बुदका मब्बु, गौका औ, और उडुपका ओड आदि। इन उदाहरणोंसे स्पष्ट हो रहा है कि संसारकी समस्त भाषाओंके तीनों विभाग वैदिक भाषासे ही निकले हैं। तीनों विभागोंमें एक ही महान् नियमके अनुसार परिवर्तन हो रहा है- तीनों विभाग विस्तारसे संकुचित और क्लिष्टसे सरल हो रहे हैं।

अक्षर विचार

वर्णोच्चारण-वर्णोंकी ध्वनि श्रवण होते ही किसी विलक्षण अर्थका बोध होता है। इन्हीं मूल वर्णोंसे धातुयें बनती हैं, धातुओंसे शब्द बनाये जाते हैं। उस शब्दका उसी अर्थमें प्रयोग क्यों होता है? जैसे- पिता यह शब्द जनक (बाप) को बताता है, माता शब्द जननीको बताता है। पितर, पिदर, फादर, मातर, मादर, मथर इत्यादि कई अपभ्रंश उच्चारण इस प्रकारके हो गये हैं। पिदरका अर्थ फादर (पिता) ही क्यों होता है। इसका उत्तर फारसी-अंग्रेजीवाले नहीं दे सकते हैं, किन्तु संस्कृत भाषाभिज्ञ पुरुषके लिये इसका उत्तर देना साधारणसी बात है। वह पा रक्षणे मा-माने, धातुओंसे तृ प्रत्यय होनेसे दोनों शब्द सिद्ध कर देगा। गहराईमें उतरकर संस्कृत विद्वान्से यह भी प्रश्न कर दिया जाय कि पाका अर्थ रक्षण और माका अर्थ सन्मान करना ही क्यों हो गया है? अन्य भाषाओंकी तो उलझन प्रथम ही प्रश्नने करदी थी, दूसरा प्रश्न तो उनके लिये सर्वथा ही बुद्धिसे बाहरकी वस्तु हो जायेगी, परन्तु संस्कृत भाषामें

प्रत्येक वर्णका एक एक अर्थ सुनिश्चित है जो कि वर्णकी ध्वनिसे अपना एक एक खास विलक्षण अर्थ रखता है। अक्षरार्थके विचारके आधारपर धातुका अमुक ही अर्थमें प्रयुक्त होना सुनिश्चित हो जाता है। इसीलिये वेदके लिये यह घोषणा जैमिनी आदि महर्षियोंने कर डाली है कि— 'एकेनापि वर्णेन व्यर्थेन न भवितव्यम्' अर्थात् एक भी वर्ण व्यर्थ नहीं है, उसकी योजना ठीकसे होनी चाहिये।

निरर्थकं पदं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥

इस प्रसिद्ध न्यायका जन्म भी इसी उद्देश्यसे हुआ, अर्थात्— निरर्थक पद संसारमें कोई है ही नहीं और कोई भी वनस्पति बिना कामकी सृष्टिमें नहीं है, अयोग्य पुरुष भी कोई नहीं है, परन्तु योजना कर सकनेवाला पुरुष सर्वत्र सुलभ नहीं है। इसी बातका संसारके अद्वितीय विद्वान् महर्षि पतंजलिने व्याकरण महाभाष्यमें इस प्रकार निरूपण किया है —

अर्थवन्तो वर्णाः। धातु प्रतिपादिकप्रत्यय-निपातानामेकवर्णानामर्थदर्शनात्। धातव-एकवर्णाः अर्थवन्तो दृश्यन्ते। प्रातिपदिकान्येक वर्णान्यर्थवंति। निपाता एकवर्णा अर्थवन्तः।

अर्थात् वर्ण अर्थवाले हैं। धातु, नाम, प्रत्यय और निपातका प्रत्येक वर्ण अर्थमान् होता है, इसी तरह धातु एक वर्णका अर्थवान् होता है, नाम अनेक वर्णोंके संयोगसे अर्थवान् होते हैं और निपात एक वर्णका अर्थवान् होता है। यह महामुनि पतंजलिकी भी कल्पना नहीं है, प्रत्युत वेद स्वयं कहते हैं कि—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते। (ऋ० १।१६४।३९)

अर्थात् ऋचायें परम अविनाशी शब्दमय अक्षरमें ठहरी हैं, जिनमें देवता अर्थात् शब्दके विषय (अर्थ) ठहरे हैं। जो उस अक्षरार्थको नहीं जानता, वह ऋचाओंसे क्या लाभ प्राप्त करेगा? इसी मन्त्रपर पतंजलि मुनिने कहा है कि—

वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्तते।
तदर्थमिष्टबुद्ध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते॥
(महाभाष्य० १।२।१)

अर्थात् वाणीका विषय वर्णज्ञान है, जहाँ ब्रह्म (वेद) विद्यमान है। इसका अभिप्राय यही है कि बिना अक्षरार्थके वेदका ज्ञान नहीं हो सकता। निरुक्तकारने भी कहीं कहीं इस वैदिक शैलीका अनुकरण किया है। वे लिखते हैं कि-

कः कमनीयो भवति सुखो भवति क्रमणीयो वा। तद्यथा कः कमनो वा क्रमणो वा सुखो वा इति। (निरु० दै० ४।२२)
गकारमनक्तेर्वा दहतेर्वा। (निरु० दै० १।१४)

अर्थात् क, कमनीय, सुख, क्रमणीय आदि अर्थवाला है और ग, दहन आदि अर्थवाला है। यह शैली उपनिषदोंमें भी पाई जाती है। छान्दोग्य उपनिषद्में 'सत्य शब्दके स, त और य अक्षरका अर्थ करते हुए कहा गया है कि—

तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि 'स-ति-यमिति'। तद्यत् सत् तदमृतमथ यत् ति तन्मर्त्यमथ यत् यम् तेनोभे यच्छति॥

अर्थात् 'सत्य' शब्दके तीन अक्षरोंमें 'स' का अर्थ अमृत, 'त' का अर्थ मर्त्य और 'य' का अर्थ दोनोंको नियममें रखनेवाला है। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें इस प्रकारके उदाहरण बहुत ही विशद रूपसे पाये जाते हैं। गोपथ ब्राह्मणमें 'भर्ग' शब्दके लिये लिखा है कि—

भ, इति भासयतीतीमांल्लोकान्।
र, इति रंजयतीतीमांल्लोकान्।
ग, इति गमयतीनीमांल्लोकान् इति भर्गः।
(गोपथ ब्राह्मण)

अर्थात् 'भ' से भासित होना, 'र' से रंजित होना और 'ग' से गमन करना समझना चाहिये। दूसरी जगह गोपथ २।२।५ में लिखा है कि—

मख इत्येतद् यज्ञनामधेयं छिद्रप्रतिषेध-सामर्थ्यात्। छिद्रं खमित्युक्तं तस्य मेति प्रतिषेधः मा यज्ञे छिद्रं करिष्यतीति।

अर्थात् यज्ञका नाम मख है। इसमें कोई छिद्र (त्रुटि) न हो, इसलिये इसका नाम मख रक्खा गया है। छिद्रको 'ख' कहते हैं। उसका निषेध करनेवाला 'म' है। यज्ञमें कोई छिद्र (त्रुटि) न होने पावे, इसलिये इसको 'मख' कहते हैं। इसी तरहका अर्थ नाक शब्दका भी निरुक्तमें किया गया है। वहां लिखा है कि—

'कामीति सुखनाम, तत् प्रतिषिद्धं प्रतिषिध्येत'

अर्थात् 'क' को सुख कहते हैं। सुखका निषेध करनेवाला 'अ' है और 'अ' का निषेध करनेवाला 'न' है इस तरहसे नाक नाम सुखस्थान-स्वर्गका है। इसी तरह समस्त वैदिक और लौकिक साहित्यमें प्रत्येक अक्षरका अर्थ प्रचलित है। सभी जानते हैं कि—

अ= अल्प, अभाव, नहीं, अकार प्रणवकी प्रथम मात्रा होनेसे सर्वत्र लिपियोंमें प्रथम स्थान पाता है, विश्व, जाग्रत, ब्रह्म, आदि।
आ= भली भांति, कुल, मर्यादा, अभिविधि।
ई= गति।
उ= और, वह, वितर्क, तैजस, स्वप्न।
ऋ= गति, प्राप्त करना।
लृ= गति, ज्ञान।
क= बांधना, रोकना, प्रश्न करना, (क : किं, का)।
ख= आकाश, पोल, ब्रह्म।
ग= गति, गमन।
च= और, पुनः, अनुक्त।
छ= काटना, ढकना।
ज= उत्पन्न होना, जय पाना।
झ= नाश होना।
ट= विकल्प।
ड= करना (डुकृञ् करणे) आकाश गमन।
ढ= गति।
त= पार।
दा= देना, पालन, खण्डन।
धा= धारण करना, स्थापन।
न= नहीं।
पा= रक्षण, पीना।
भा= प्रकाश, दीप्ति।
मा= मान, मापना।
य= जो।
रा= देना, धन।
ला= लेना।
वा= गति, गन्ध, अथवा।
स= साथ, शब्द करना।
ह= निश्चय।
आः= स्मरण, हटाना, कोप, सन्ताप, इत्यादि।
कु= पृथिवी, खराब, पाप, निवारण।
तु= पाद पूरण, भेद, समुच्चय, निश्चय।
नु= प्रश्न, अनुनय, विकल्प, अतीत, इत्यादि।
कम्= शिर, सुख, जल।
हूँ= वितर्क, लज्जा, परिप्रश्न, अनुमति, इत्यादि।
सु= स्तुति, अति उत्तम।
होभोः= अभिमुखी, बुलाना। इत्यादि।
वम्= वरुण।
व= इव।
वा= विकल्प।
अहो, हि= विस्मय, विषाद।
चेत्= यदि।
निः, दुः= निन्दा।
आम्= अङ्गिकार।
हुं= तर्क, वितर्क।

इस प्रकार प्रत्येक वर्णका स्वतंत्र अर्थ होता है और इन्हीं वर्णोंसे धातुएँ बनती हैं। धातुओंसे प्रत्यय जोडनेसे शब्द निष्पन्न होते हैं। शब्दोंका अर्थ भी सुनिश्चित होता है। यह बात संस्कृतभाषाको छोडकर अन्य किसी भी भाषामें इतनी स्पष्ट नहीं पाई जाती है। शब्दोंका शक्ति संकेतग्रह सृष्टिके आदिमें किस प्रकार हुआ है यह बात हम आगे बतलायेंगे। इन समस्त प्रमाणोंसे अच्छी प्रकार प्रकट हो जाता है कि प्राचीन वैदिक ऋषि अक्षरार्थका ज्ञान रखते थे और उसी शैलीसे अर्थ करते थे। इस प्रकारके मौलिक अर्थोंको ढूँढ निकालनेकी विधि उन्हें वंश परंपरासे ज्ञात थी। वे इसे योगके द्वारा सम्पादित करते थे। वे धातुओंमें आये हुए वर्णोंमें संयम करते थे और प्रत्येक वर्णका अर्थ स्थिर कर लेते थे। पतञ्जलि मुनिने इस संयमके लिये योगशास्त्रमें लिखा है कि-

'शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकर-स्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम्।'

अर्थात् शब्द अर्थ और प्रत्ययोंके संयोग विभागोंमें संयम करनेसे समस्त प्राणियोंकी भाषाओंका ज्ञान हो जाता है। जिस प्रकार धातु प्रत्ययोंमें संयम करनेसे मनुष्य भाषाके

प्रत्येक वर्णके अर्थोंका बोध होता है, उसी तरह प्रत्येक प्राणीकी भाषामें संयम करनेसे प्रत्येक प्राणीकी भाषाका ज्ञान हो जाता है। कहनेका मतलब यह कि अक्षर विज्ञान जाननेके लिये धातुओं और प्रत्ययोंमें संयम करनेकी आवश्यकता है। थोडे ही दिन संयम करनेसे पता लगने लगता है कि अमुक शब्दके भीतर अमुक वर्ण अपना कौनसा भाव प्रकट कर रहा है। इस प्रकार अनेक शब्दोंमें ढूँढनेसे उस वर्णका भाव विदित हो जाता है और मालूम हो जाता है कि यह वर्ण इस प्रकारका अर्थ रखता है।

पाश्चात्य विद्वानोंने भी इसका अनुभव किया है। आर० सी० ट्रेंविश, डी० डी० अपनी पुस्तक 'स्टडी ऑफ वर्ड्स्' में लिखते हैं कि एक एक शब्द और अक्षरमें कविता भरी हुई है, इसलिये शब्दोंका वास्तविक अर्थ जाननेके लिये शब्दोंके धात्वर्थोंको अवश्य जान लेना चाहिये। हम भी यही कहते हैं कि विना धात्वर्थके और विना अक्षरार्थके भाषाका ठीक ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिये यदि हम चाहते हैं कि वैदिक भाषाको वैज्ञानिक, अपौरुषेय और ईश्वरप्रदत्त सिद्ध करें, तो उचित है कि उसके एक एक अक्षरके अर्थको समझें कि किस प्रकार और किन कारणोंसे उसकी धातुओंका-अक्षरोंका-अमुक अमुक अर्थ होता है।

(क्रमशः)

गायत्रीद्वारा विश्व-विज्ञान

[आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विश्व विकासके सचित्र रेखांकनके साथ]

लेखक विष्णुदेव सांकलेश्वर पंडित, एम्. ए., व्याख्यान दिवाकर, व्याकरणतीर्थ, वेदान्तशास्त्री

[गतांकसे आगे]

तीसरा क्रम—

परमाणुओंमें गति, स्फूर्ति और चचलता

सर्वव्यापक चेतनसत्ता सृष्टिकी प्रारम्भ दशामें जब जड़-सत्ता प्रकृतिके परमाणुओंमें अपनी चित्-शक्तिको जागृत करती है, तब परमाणुओंमें गति, स्फूर्ति और चचलता प्रगट होने लगती है, अर्थात् साम्यावस्थामें सुषुप्त परमाणुओंके भीतर कालान्तरसे चेतनसत्ताके द्वारा स्वय ही चेतनता आने लगती है और चेतनता आते ही परमाणुओंमें गति, स्फूर्ति होने लगती है।

चौथा क्रम—

परमाणुओसे चिदणु

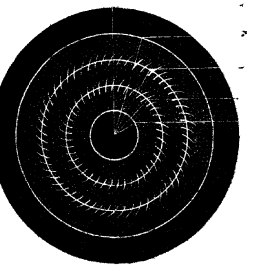
प्रकृतिके जो ये तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके परमाणु चेतनता ग्रहण करते हैं, इसीसे परमाणुओंके अपने अपने मण्डलमें चंचलता होते ही हलन चलन होने लगता है। ये हलन चलन होनेके कारण एक एक गुणके परमाणुओंमें गति, स्फूर्ति होते ही परस्पर मिश्रण होने लगता है। ये परस्पर गुणोंके मिश्रण होनेके कारण ही परमाणु अणु बनने लगते हैं। इन अणुओंको चिदणु भी कहते हैं। कारण यह है कि ये प्रकृतिके परमाणु मिश्रण होकर अणुओंके बननेके समय अपनी अन्दर चेतनसत्ताको आवृत कर लेते हैं। जड़सत्ता चेतनसत्ताको घेर लेती है। प्रकृतिमें पुरुष वशीभूत हो जाता है, इसीलिये इन चिदणुओंको अर्थात् प्रकृतिमें आवृत पुरुषको जीवसंज्ञा सबसे प्रथम यहींपर मिलती है।

ऐसे चार क्रममें आते आते प्रकृतिक तीन मंडलोंके परमाणु ५४' से ६४'' योजनके विस्तारमें अव्यक्तसे व्यक्त होने लगते हैं। ६४' से ६६' तकके परमाणु सदा अव्यक्त स्वरूपसे रहते हैं और ६७'' से ७०'' तक केवल सत्त्वगुणके परमाणु परम अव्यक्त दशामें ही नियत रहते हैं। सृष्टिके सर्जन कार्यमें उनका कोई उपयोग नहीं होता। वे एकमात्र मूल आधार मूल प्रकृतिके स्वरूपसे साक्षीरूप बनकर उपयोगी होते हैं।

४ परमाणुओंके स्वभाव

प्रकृतिके तीन मडल जो रेखाचित्रके मध्यवर्ती बने हैं, उसके मध्यमें शून्य गोलका मडल है और उसके बाह्यवर्ती केवल चेतनका मंडल है।

प्रकृति मडलके तीन गुणवाले परमाणु विविध प्रकारके होते हैं। उनके प्रकार और धर्म निम्न प्रकारके हैं—



जडसत्ता- प्रकृतिकी अत्यंत सूक्ष्म अवस्थाको परमाणु कहते हैं ।

(१) उन परमाणुओंके दो भेद हैं-

ऋणधर्मी (Negative) और धनधर्मी (Positive) वैसे ही पुरुषधर्मी और स्त्रीधर्मी ।

(अ) ऋणधर्मी (Negative) परमाणुओंके और दूसरे दो भेद हैं—

विद्युद्धर्मी (Electric) और चुंबकधर्मी (Magnetic) ।

(ब) धनधर्मी (Positive) परमाणु ऋणधर्मी परमाणुओंके विद्युद्धर्मी और चुंबकधर्मी परमाणुओंके साथ अनुकूल होकर रहते हैं; अर्थात् वे धनधर्मी परमाणु विद्युद्धर्मीके साथ मिलकर विद्युद्धर्मी अणुओंको बनाते हैं और चुंबकधर्मी परमाणुओंके साथ मिलकर चुंबकधर्मी अणुओंको बनाते हैं ।

(क) सत्त्वगुणके परमाणु विद्युद्धर्मी, ऋणधर्मी तथा पुरुषधर्मी होते हैं; तमोगुणके परमाणु चुंबकधर्मी ऋणधर्मी और पुरुषधर्मी होते हैं; तथा रजोगुणके परमाणु धनधर्मी और स्त्रीधर्मी होते हैं ।

(ड) सत्वगुणके और तमोगुणके परमाणु पुरुषधर्मी होनेके कारण सजातीय पुरुषरूप हैं और रजोगुणके परमाणु स्त्रीधर्मी होनेके कारण सत्वगुण और तमोगुणकी अपेक्षा विजातीय स्त्रीस्वरूप हैं ।

विज्ञानका यह नियम है कि विजातीय धर्मवाले परमाणुओंमें परस्पर आकर्षण होता है और सजातीय धर्मवाले परमाणुओंमें परस्पर विकर्षण होता है ।

५ अणुओंका सर्जन (Atoms)—

रजोगुण मंडलके परमाणु तमोगुण और सत्वगुण मंडलके परमाणुओंका आकर्षण करते हैं । इसीसे सत्व और रजके परमाणुओंके मिश्रणसे विद्युत्धर्मी अणुओं (Elections) का सर्जन होता है । वैसे ही तमोगुण और रजोगुणके परमाणुओंका मिश्रण होनेसे चुंबकधर्मी (Protons) अणु तैयार होते हैं । इस रीतिसे रजोगुणका एक परमाणु और सत्तोगुणका एक परमाणु, इन दोनोंका संमिश्रण होते ही, जो एक अणु बनता है; वही जलकी तन्मात्रा (Hydrogen Atom) स्वरूपसे सबसे पहली उत्पन्न हुई है ।

६ द्व्यणुकोंका सर्जन (Moliculis)—

ऊपरके बने हुए अणुओंके परस्पर संमिश्रणसे द्व्यणुकों तयार होते जाते हैं । जैसे दो अणु- Hydrogen एक अणु Oxygen ये मिलकर जलके द्व्यणुक तयार होते हैं ।

७ सूक्ष्म रेणुएँ (Particles)—

दो या दोसे अधिक ऐसे द्व्यणुकोंके संमिश्रण होनेके कारण सूक्ष्म रेणुएं तयार होते हैं । उसीको परम रेणु कहते हैं ।

इसी रीतिसे ऊपर बताये हुए सर्जनक्रमके अनुसार परमाणुओंके संमिश्रणसे अणुओं, अणुओंके मिश्रणसे द्व्यणुओं और द्व्यणुकोंके मेलसे सूक्ष्मरेणुओंका सर्जन होता जाता है । ये सूक्ष्मरेणु और द्व्यणुक आदि परमतत्व इतने तो सूक्ष्म होते हैं; जो हमारे सूक्ष्मदर्शक यंत्रोंके द्वारा कल्पना से भी देखे नहीं जा सकते हैं ।

८ नीहारिका (Nebulusform)—

ये प्रकृति मंडलके परमाणु धीरे धीरे प्रवाहके बहावके बाद घनीभूत होने लगते हैं; तब उसका सर्वप्रथम स्वरूप बनता है, उसको नीहारिका कहते हैं ।

ये नीहारिकाओंके पुंजके पुंज घनीभूत होते हैं और बिखरने लगते हैं; तब धीरे धीरे सर्व लोक, सर्व भुवनों और सर्व तारा मंडलोंके बननेका आरम्भ होता है । अतः नीहारिका ही सृष्टिसर्जनका प्रथम दृश्यमान पदार्थ है, परन्तु उसके कारणमें ऊपरके अनेक तत्त्व पूर्वसे ही बनने लगे हैं; यह समझना अत्यंत आवश्यक है । सृष्टिसर्जनका यही क्रम विज्ञानकी पद्धतिके अनुसार बताया है, अब सांख्यवादियोंका और अध्यात्मवादियोंका सर्जनक्रम बताते हैं; जो विज्ञानपद्धतिसे भिन्न नहीं है ।

९ पांच महाभूतोंकी तन्मात्राओंकी उत्पत्ति—

आकाशकी तन्मात्रा— जब प्रकृतिके मूल परमाणुओंमें गति होने लगती है और परमाणु संमिश्रित होकर अणु बनने लगते हैं; तब अणुओंकी चारों ओर खाली जगह-अवकाश हो जाता है । यही अवकाश जो सर्जनके समय प्रथम ही प्रथम हुआ है; इसीको आकाशकी सूक्ष्म तन्म कहते हैं ॥

वायुकी तन्मात्रा— आकाशकी जो सूक्ष्म तन्मात्राएं अवकाश रूपसे बनी हैं; इसी खालीकी जगहमें अणुओंकी गति होती है। यही गति है, जिसको वायुकी तन्मात्रा कहते हैं।

अग्निकी तन्मात्रा- परमाणुओंमें परस्पर संमिश्रण होनेसे अणु बनते हैं और अणुओंके घनीभूत होनेसे द्व्यणुक बनते हैं। ये द्व्यणुक बनते बनते, इनमें भारीपन आता है और भारीपन आनेके कारण ही उनमें गति होने लगती है। द्व्यणुकोंमें इस रीतिकी गति होनेसे; इनमें हवा पैदा होती है। इसी हवासे अवरोध पैदा होता है और अवरोध पैदा होते ही वायु और द्व्यणुकोंमें परस्पर संघर्ष होता है। इसी संघर्षके कारण पदार्थमें अग्नि उत्पन्न हो जाता है। ये तमाम प्रकारके अग्निधर्मी (Cumbustible matter) अग्नि और तेजकी तन्मात्राएं हैं।

जल और पृथ्वीकी तन्मात्राएं

परमाणुओंके संमिश्रणसे अणुओंके बनते बनते ही धातुओंकी तन्मात्राएँ तयार होती हैं और अणुओंके बनते बनते तो सब प्रकारकी धातुओंकी तन्मात्राएँ तयार हो जाती है। इसी रीतिसे जो प्रथम धातुओंकी तन्मात्रा बनी, उसीको जलकी तन्मात्रा तथा सब प्रकारकी धातुओंकी तन्मात्रा कहते हैं।

नीहारिका- द्व्यणुकोंमें अग्नि उत्पन्न होते ही जो तेजस्वी और प्रकाशमय द्रव पदार्थ तयार होता है; उसीको नीहारिका कहते हैं। वेद और उपनिषद्‌की परिभाषामें इसी नीहारिकाको हिरण्यगर्भ कहते हैं और उसीको ब्रह्मांड भी कहते हैं।

१० वेदोंकी आध्यात्मिक सृष्टि—
ऋचा और ऋग्वेद

सृष्टिके आरम्भमें प्रकृति अपनी साम्यावस्थाको छोडकर जब अपने परमाणुओंसे अणुओंकी रचना करने लगती है और जब अणुओंसे द्व्यणुक बनने लगते हैं, तब इन द्व्यणुकोंकी गति सीधी न होते हुए भारीपनके कारण तिरश्चीन-वक्र होने लगती है। इन द्व्यणुकोंकी गति ऊपरकी ओर होती है। इसी तिरश्चीन प्रकाशमयी रेखाओंको ऋक् (Rik Ray or eight) कहते हैं। इन ऋचाओंको प्रकाशकी कलाओं कहते हैं। ये प्रकाशकी कलाओं= ऋचाएँ प्रकृतिके सर्जनके प्रथम तात्विक पदार्थ हैं; उसी प्रकाशमयी कलाओंकी क्रियाओंके अनुसार ऋषियोंने जो वर्णन किया है; इसीको ऋग्वेदकी ऋचाएँ कहते हैं; जिसमें सृष्टिके सहज सरल वर्णन और दर्शनकी कविताएँ हमें देखनेको मिलती है।

यजुअें और यजुर्वेद

जिस रीतिसे बीचमेंसे अंकुर फूटने लगते हैं और जब बीज अपनी कायाका होम कर देता है और अंकुरसे छोड फूटता है तो अंकुर अपनी कायाका होम करता है; इसी रीतिसे एककी आहुतिमेंसे दूसरे पदार्थोंका जीवन शुरू होता है। तो, इसी बीजांकुर न्यायसे परमाणु अपनी कायाका होम करके अणुओंको बनाते हैं और अणु अपनी कायाका होम करके द्व्यणुकोंको बनाते हैं और द्व्यणुक स्वाहा होकर परम रेणुओंका निर्माण करते हैं। इसी स्वाहाकी क्रियाको होम या यज्ञ कहते हैं और इसीको यजु कहते हैं अर्थात् यज्ञयागके प्रयोग और विधिविधानको बतानेवाले यजुर्वेदके मूल बीजकी निष्पत्ति इन परमतत्त्वकी यजुओंमें है।

साम और सामवेद

जब परमरेणुएं अपनी गति बनाकर प्रवाहके स्वरूपमें नीहारिका बनती हैं; तब उस प्रवाहकी गति अवकाशमें होनेके साथ ही, उसमेंसे मधुर मंद शब्द उत्पन्न होते हैं और इसी मधुर मद स्वरके विकास होते होते आकाशमें ध्वनि उत्पन्न होती है और भिन्न भिन्न स्वरके लयोंमें सामके गान प्रगट होते हैं।

ये सर्वप्रथम स्वर ही सामके गानमें परिणत होते हैं और सप्तस्वरके लयमें सामवेदकी निष्पत्तिके मूल कारण बनते हैं।

इसी सृष्टिसर्जनकी प्रारम्भ दशामें जो ऋचाएँ, यजुअें और साम प्रकृतिमंडलमें बने हैं, उसीका निर्देश, " ऋचो यजूंषि सामानि " के स्वरूपसे है अर्थात् यही वेदोंकी आध्यात्मिक सृष्टि है और इसीलिये ऋक्-यजुः सामको वेदत्रयी कहते हैं॥

उसके बाद जब स्थूल जगत्‌का निर्माण होता है तब अथर्ववेदके मन्त्र प्रगट होते हैं। इस वेदमें विश्वके निर्माणकी पद्धतिके मन्त्र भी पाये जाते हैं और विशाल तारा-के मंडलोंकी उत्पत्तिके वर्णन भी अथर्ववेदमें हैं। उसी

तारा मंडलोंको देव भी कहते हैं; इसलिये अथर्ववेदका निर्माण आधिदैविक सृष्टिमें है और वेदत्रयीका निर्माण आध्यात्मिक सृष्टिमें है। आधिभौतिक सृष्टिका निर्माण इसके बाद बना है।

प्रकरण दूसरा
प्रकृति और पुरुष

प्रकृतिको ही जडसत्ता (Matter मॅटर) और पुरुषको ही चेतनसत्ता (Spirit स्पीरीट) कहते हैं। ये दोनों सत्ता एक बनकर सनातन शाश्वत, अनादि अनंत रूपसे रहती हैं। ये दोनों सत्ताएं एकदूसरेमें मिलकर अन्योन्याश्रयके रूपसे रहती है। पुरुष स्वय निष्क्रिय है, परन्तु प्रकृति उस पुरुषको अपनी ओर खींचती है, बांधती है और आवृत करती है। पुरुष प्रकृतिमें निवास करता है। प्रकृति देह है, तो पुरुष देही है। प्रकृति घर है, तो पुरुष उस घरमें रहनेवाला अधिष्ठाता है। प्रकृति रथ है, तो पुरुष रथी है।

जडसत्ता जब चेतनसत्ताकी चेतनताको लेती है, तभी जडसत्ताके परमाणुओंमें गति, स्फूर्ति, चंचलता, क्रिया, शक्ति आदि प्रगट करते है। चेतनसत्ताके बलपर ही जड-सत्ताके त्रिगुण परमाणुओंमें गति, क्रिया आदि होते हैं।

जडसत्ताके भीतर व्याप्त भरपूर सचराचर सर्वके अन्दर रहनेवाली चेतनसत्ताको ही पुरुष या ईश्वर ऐसा व्यवहारोपयोगी नाम दिया जाता है। वेदों और उपनिषदोंमें पुरुष या ईश्वरके रूपसे जो वर्णन मिलते हैं वे प्रकृतिके भीतर रहनेवाले पुरुषका ही है। जडसत्ताके भीतरकी चेतनसत्ताको उपनिषदोंमें ईश या ईश्वर भी कहते हैं; परन्तु प्रकृतिके मंडलमें उनके तीन नाम हैं—

	व्यक्त	अव्यक्त	परम अव्यक्त
१	ईश्वर	महेश्वर	परमेश्वर
२	आत्मा	अध्यात्म	परमात्मा
३	पुरुष	—	पुरुषोत्तम
४	स्वयंभू	—	—
५	गजानन	—	—
६	नारायण	—	—

प्रकृति और पुरुष दोनोंसे परे जो चेतनसत्ता रहती है; उसका वर्णन कहींपर नहीं है। क्योंकि वह चेतनसत्ता तो अनामी है और सृष्टिके सर्जन आदि कार्यमें उसका कोई उपयोग नहीं है।

प्रकृति मंडलके पांच प्रकार

इस पुरुषकी दो प्रकृतियाँ हैं। परा और अपरा। परा प्रकृति ही चेतनसत्ता है; इसीको ज्ञानशक्ति, महाविद्या, योगमाया आदि अनेक नाम दिये जाते हैं। और अपरा प्रकृति ही जडसत्ता है इसीको अविद्या, माया, द्रव्य-शक्ति आदि अनेक नाम दिये जाते हैं। चेतनसत्ताकी ज्ञान-शक्ति और जडसत्ताकी द्रव्यशक्ति, इन दोनोंके मिश्रणसे क्रियाशक्ति उत्पन्न होती है और क्रियाशक्तिकी उत्पत्तिके साथ ही साथ सर्जनका कार्य शुरु होता है।

१ परम अव्यक्त

७० " से ६८ " योजनके मंडलमें प्रकृतिके शुद्ध सात्त्विक गुणोंके परमाणु रहते हैं। जो सृष्टिके सर्जन, पालन और संहारमें कोई रीतिसे उपयोगी नहीं होते; क्योंकि उनके विस्तारतक रजोगुण और तमोगुणके परमाणु पहुचनेके पहले ही वापस लौटकर, तिरश्चीन गतिसे नीचे उतर जाते हैं। उस परम अव्यक्तको ही मूल प्रकृति कहते हैं, और इसीको ही परमब्रह्म, परमधाम, परमपवित्र आदि कहते हैं।

२ साक्षी चैतन्य

६७ " से ६८ " योजनके मंडलमें प्रकृतिके सत्वगुणके साथ रजोगुणका मिश्रण होता है। यहाँपर अव्यक्तसे व्यक्त होनेकी प्रथम क्रियाका क्रम शुरू होता है। इसीलिये उसको साक्षी चैतन्य कहते हैं। वह सबसे प्रथम पदार्थ है, जो पीछेके सभी पदार्थोंका साक्षी रहता है।

३ ईश्वर चैतन्य

६४ " से ६२ " योजनके प्रकृति मंडलमें परमाणु अणुओंके रूपमें बनते हैं। इसी आणवावस्थाको ईश्वर चैतन्य कहते हैं; क्योंकि यह सूक्ष्म अवस्था है; जो भिन्न भिन्न स्वरूपमें बननेका सामर्थ्य-ईश्वरत्व रखती है।

[क्रमशः]

प्रमाणपत्र वितरणोत्सव

किसुमु (पूर्व अफ्रीका)

शिवरात्रीके शुभावसरपर यहांका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव मनाया गया। इसी दिन महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वतीजी-का पवित्र ज्ञानपर्व भी था। सायं ६ बजे उत्सव प्रारम्भ हुआ, जिसमें आर्यसमाजके सभासद एवं नगरके अन्य अनेक प्रतिष्ठित सज्जन भी उपस्थित थे। उत्तीर्ण विद्यार्थियोंको प्रमाणपत्र एवं पारितोषिक आर्यसमाजके प्रधान श्रीमान् विठ्ठलजी जीवनपुत्रके करकमलों द्वारा वितरित किये गये। प्रधान महोदयने अपने भाषणमें कहा कि— मैं चाहता हूँ कि यहांके भारतीय बालक एवं बालिकायें संस्कृत भाषाका खूब अध्ययन करें और उसमें अच्छी प्रगति करें; क्योंकि इस भाषाका अध्ययन करनेसे उनमें एक सांस्कृतिक जागरणके भाव उत्पन्न होंगे, जिससे वे एक आदर्श भारतीय नागरिक बन सकेंगे।

केन्द्र व्यवस्थापक श्रीमान् विप्रबन्धुजीने केन्द्र विषयक प्रगतिका विवरण पढकर सुनाया तथा आशा व्यक्तकी कि संस्कृत प्रचारका यह कार्य क्रमशः प्रगति करता रहेगा।

शान्तिपाठके पश्चात् कार्यक्रम समाप्त हुआ।

केडिला

ता. ५-२-५५ को सायं ४ बजेसे ७ बजेतक इस केन्द्रका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव श्रीमान् तेक्कुंजे गोपालकृष्ण भट्ट एम. ए. की अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। केन्द्र व्य० श्रीयुत च० मू० ईश्वर शास्त्रीने वार्षिक विवरण पढकर सुनाया। अध्यक्ष महोदयने अपने भाषणमें इस प्रचार कार्यकी प्रशंसा की। प्र० प्र० मिस्तूर पुरोहित शंकर नारायण भट्ट और के० नारायण उपाध्यायके सारगर्भित भाषण हुए। उत्तीर्ण छात्रोंको प्रमाणपत्र एवं पारितोषिक दिये गये। मंगलगानके पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

रात्रिमें इसी उत्सवका अङ्गभूत " यक्षगान " अर्थात् पौराणिक कथाओंका अर्थ-विवरणादि होता रहा। यह कार्यक्रम रात्रि १ बजे धन्यवाद आदि देनेके पश्चात् समाप्त हुआ।

आर्वी

तिल संक्रान्तिके शुभावसरपर स्थानीय प्रमाणपत्र वितरणोत्सव बड़े उत्साहके साथ मनाया गया। अध्यक्ष-स्थान माननीय मामलेदार सा० श्रीयुत गो० ल० फाटकने ग्रहण किया। मुख्याध्यापक श्रीयुत हरिहरराव जोशीका इस उत्सवमें प्रमुख हात रहा। श्रीयुत वसन्तरावजी देशपांडे शिक्षक हाईस्कूलने अपने भाषणमें हिन्दी एवं प्रान्तीय भाषाओंकी उन्नतिके लिये संस्कृतका अध्ययन अत्यन्त लाभकारी बताया। अध्यक्ष महोदयने छात्रोंका अभिनन्दन किया तथा प्रमाणपत्र वितरित किये। केन्द्रव्यवस्थापक श्रीयुत दि० वि० काटेकरने सबका आभार मानकर अपना वक्तव्य संस्कृतमें समाप्त किया।

वाढवणे

१६ जनवरी १९५५ ई० को उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र वितरित किये गये। अध्यक्षस्थान श्रीयुत माधव रावजी घोणशीकर एम. एल. ए. ने ग्रहण किया। वाढवणा हाईस्कूलके प्रधानाध्यापक श्रीयुत ना० मु० उजळंबकरने अपने भाषणमें 'आज संस्कृत प्रचारका महत्व' विषयपर प्रकाश डाला। श्रीयुत वि० रा० निलंगेकर, विशारद (पारडी) का भी २० मिनिटतक भाषण हुआ। अध्यक्षीय भाषणके पश्चात् अल्पोपहार होकर कार्यक्रम समाप्त हुआ।

तुळजापुर

दिनाङ्क २६-१-५५ को स्थानीय प्र० पत्र वि० उत्सव श्रीमान् विश्वनाथ रावजी न्यायाधीशकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। उत्तीर्ण छात्रोंको प्रमाणपत्र तथा पारितोषिक वितरित किये गये। अध्यक्षीय भाषणके पश्चात् श्रीयुत औदुंबर रावजीने सबका आभार माना और इस प्रकार कार्यक्रम पूर्ण हुआ।

धाराशीव (उस्मानाबाद)

स्थानीय प्रमाणपत्र महोत्सव नगरके अधिकारी, व्यापारी, अध्यापक, वकील आदि नागरिकोंकी विशाल उपस्थितिमें सम्पन्न हुआ। संस्कृत प्रचारके लिये अत्यन्त निष्ठावान् एवं

उत्साही कार्यकर्ता श्रीमान् जनार्दनरावजी मोघे मुख्याध्यापककी अध्यक्षतामें ता० ५-१-५५ को यह समारम्भ हुआ। केन्द्र विवरण पढा जाकर अध्यक्षीय भाषण हुआ। प्रमाणपत्र वितरणके पश्चात् सभा विसर्जित हुई। इस अवसरपर श्रीयुत श्रीधरराव देव (जो ८ $\frac{१}{५५}$ को सेवा निवृत्त हुए) का भी विशेष सत्कार किया गया। आपने संस्कृत-प्रचार-कार्य आजीवन करनेका आश्वासन दिया। केन्द्रव्यवस्थापक श्रीयुत न० य० महाजनके उत्साहपूर्ण सहयोगसे यहाँ संस्कृतका प्रचारकार्य क्रमशः बढता जा रहा है।

बीड

दिनाङ्क ११-१-५५ को सायं ४ से यह प्र० पत्र वितरणोत्सव आरम्भ हुआ। वेदशास्त्रसम्पन्न श्रीमान् देवीदास श्रीराम महाराज ज्योतिषाचार्यने अध्यक्षपद अलङ्कृत किया। ' वन्दे मातरम् ' गानके साथ कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। केन्द्र व्य० श्री रामरावजी रोंगे ने केन्द्रका प्रचार विवरण पढकर सुनाया और आगत नागरिकों एवं छात्रोंसे निवेदन किया कि वे मनःपूर्वक सुरभारतीके इस प्रचार कार्यमें अपना सहयोग दें। श्रीमान् एम. डी. मांडे तथा सौ० एल० डी० मांडेने अपने उत्साहप्रद वक्तव्य इस अवसरपर प्रस्तुत किये। कु० ए० डी० मांडेने अपने भाषणमें बताया कि स्त्रियोंको इस भाषाका अध्ययन अवश्य ही करना चाहिये; क्योंकि इसीमें हमारी आदर्श संस्कृति पनपी है। इसके पश्चात् अत्यन्त सारगर्भित अध्यक्षीय भाषण हुआ तथा उत्तीर्ण छात्रोंको प्रमाणपत्र एवं पारितोषिक दिये गये। सम्पूर्ण कार्यक्रम बडे उत्साहपूर्ण वातावरणमें पूर्ण हुआ।

लातूर

नागरिकों एवं छात्रोंकी बहुत बडी उपस्थितिमें यह समारम्भ ता० २१ $\frac{१}{५५}$ को सायं ठीक ५ बजे आरम्भ हुआ। अध्यक्ष स्थान मान्यवर श्री भगवानरावजी चिक्षे (शिक्षा-निरीक्षक, उस्मानाबाद) ने अलङ्कृत किया। प्रथम श्री दीक्षित गुरुजीने अपना प्रास्ताविक भाषण किया और अध्यक्ष महोदयको अध्यक्षस्थान अधिष्ठित करनेकी प्रार्थना की। श्री दिगंबरराव गुरुजीके अनुमोदन करनेपर अध्यक्ष महोदय स्थानापन्न हुए। उनका पुष्पहारसे स्वागत किया गया।

इसके पश्चात् श्री श्री निवासराव, श्री संद्रीकर, श्री. डी. आर. दास. श्री. हरिश्चन्द्रराव धर्माधिकारी श्री पं. माधवाचार्य व्यास तथा श्री मिरजकरके ' संस्कृत और मराठी भाषाका महत्त्व ' विषयपर भाषण हुए। केन्द्र प्रमुख एवं शालाके मुख्याध्यापक श्रीयुत द. ग. गाडेकरने केन्द्र-विवरण पढकर सुनाया। अध्यक्षमहोदयने प्रमाणपत्र बांटे और सुरभारतीके इस सुव्यवस्थित प्रचारपर आनन्द व्यक्त किया। श्री भिमनळे गुरुजीने सबका आभार माना। इस प्रकार बडी सफलतापूर्वक यह समारम्भ पूर्ण हुआ।

गेवराई

ता० १९-२-५५ को सायं ठीक ७॥ बजे जिला शिक्षणाधिकारी श्री भुजङ्गरावजी अन्दुरकरकी अध्यक्षतामें प्रमाणपत्र वितरणोत्सव हुआ। इस अवसरपर हैद्राबाद हिन्दी प्रचारिणी समितिके प्रमाणपत्र भी वितरित किये गये। सर्व प्रथम शान्तिपाठ एवं संस्कृत गीत गाया गया। दोनों केन्द्र-संचालकोंने अपने विवरण पढकर सुनाये। इसके बाद अध्यक्ष महोदयके करकमलों द्वारा प्रमाणपत्र एवं पारितोषिक वितरित किये गये। श्रीयुत देवीदासरावजी अग्निहोत्रीने ' संस्कृत भाषाकी महती एवं उसके अध्ययनकी आवश्यकता ' इस विषयपर अपना सुललित एवं सारगर्भित भाषण दिया। अध्यक्षीय भाषण, राष्ट्रगीत एवं पान-सुपारी होनेपर कार्यक्रम समाप्त हुआ।

उदगीर

दिनाङ्क १७-२-५५ गुरुवारको सायं ६ बजे शामकाके विद्यालयके विशाल भवनमें यह कार्यक्रम श्रीमान् वैद्य अनन्त दामोदर आठवले, आयुर्वेद पारंगत तथा प्राध्यापक आयुर्वेद महाविद्यालय पूना के सभापतित्वमें सम्पन्न हुआ। प्रारम्भमें सन्त कवि ह. भ. प. दासगणू महाराजका आशीर्वाद लेकर केन्द्राध्यक्ष श्रीयुत शिरोले अनन्तशर्मा साहित्याचार्यने संस्कृतमें अपना प्रास्ताविक भाषण दिया।

श्रीयुत दिगंबररावजी पसेवारके अनुमोदन करनेपर अध्यक्ष महोदयने अपना आसन ग्रहण किया। विद्यालयके प्रधान अध्यापक श्रीयुत बोविन्नासरावजीने केन्द्र तथा विद्यालयकी ओरसे अध्यक्षमहोदयका पुष्पहार द्वारा सत्कार

किया। कु० शिरोळे अरविंद शर्माने संस्कृतका मंगल गान गाया। श्री वि० द्वैपायन श्रीधराचार्यने विवरण पढ़कर सुनाया। श्री पं. वसन्तशास्त्री दिनकर दंताळ, श्रीधराचार्य विशारद तथा दंताळ हणमंताचार्य, साहित्याचार्यने अपने संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित भाषण दिये। पश्चात् वा० पं० दूधमांडे (B. S., C. B. T.) का 'औपनिषद् सिद्धान्तोंसे संस्कृतकी महत्ता' पर व्याख्यान हुआ। पं. डॉ. कर्मवीरजीका 'प्रत्येक भाषामें संस्कृत शब्दोंका बाहुल्य' इस विषयपर भाषण हुआ। इसके बाद शा. वि. प्र. अ. दे. (B. A. B E D) का गम्भीर एवं उत्कृष्ट प्रवचन हुआ। अन्तमें अध्यक्ष महोदयने अपने भाषणमें भारतवर्षकी प्राचीन विद्वत्ताका उल्लेख किया और बताया कि संस्कृतभाषासे ही मानवकी सर्वाङ्गीण उन्नति सम्भव है। केन्द्राध्यक्षने बताया कि यह केन्द्र गत पांच वर्षोंसे संस्कृतभाषाका निःशुल्क एवं जाति-धर्म निरपेक्ष भावसे प्रचार कर रहा है। धन्यवाद, काव्यगायन एवं राष्ट्र गीतके पश्चात् कार्यक्रम समाप्त हुआ।

यवतमाल (गर्ल्स हाईस्कूल)

दिनाङ्क १३-१-५५ को स्थानीय प्रमाणपत्र वितरण समारम्भ सम्पन्न हुआ। इस समारम्भका अध्यक्ष स्थान पूर्व पश्चिम विदर्भ विभागकी-शाळा निरीक्षिका श्रीमती राजे साहिबाने मण्डित किया। आपने अपने भाषणमें संस्कृत प्रचारकी इस अभिनव प्रगति एवं पद्धतिपर सन्तोष व्यक्त किया। आपने कहा कि- भारतीय छात्राओंको संस्कृतभाषाका अध्ययन अवश्य करना चाहिये; क्योंकि यह उनके जीवनको पवित्र एवं आदर्श बनानेमें समर्थ है।

केन्द्रका विवरण श्रीयुत ह० भ० केसकर मु अ. महोदयने पढ़कर सुनाया। श्रीमती सौ० पेंडसे बाई, संस्कृताध्यापिकाने सबका आभार माना। प्रमाणपत्र वितरणके पश्चात् राष्ट्रगानके साथ यह कार्यक्रम पूर्ण हुआ।

इस केन्द्रके निष्ठावान् प्रचारक श्रीयुत द. बा. तांबुळे शास्त्रीके सद्प्रयत्नोंसे बड़े उत्साह और सफलताके साथ यहाँका प्रचार कार्य चल रहा है।

श्री भारतीय विद्यालय

शिवपुरी (म. भा.)

दिनांक २८ जनवरीको वसन्त पंचमीके शुभ अवसरपर इस केन्द्रमें संस्कृतभाषा प्रचार समिति, पारडी द्वारा संचालित परीक्षाओंकी विभिन्न परीक्षाओंके प्रमाणपत्र वितरण हेतु एक उत्सवका आयोजन केन्द्रव्यवस्थापक श्री भारत सुमनजी द्वारा किया गया। उत्सवकी अध्यक्षता नगरके प्रतिष्ठित डा. मनोहर लालजी मेहता, अध्यक्ष भारत सेवक समाज जिला शिवपुरी द्वारा की गई। संस्थाके अधिष्ठाता श्री नारायण स्वामीजी इस अवसरपर विशेष रूपसे आमन्त्रित किये गये थे। सर्व प्रथम केन्द्र व्यवस्थापकजीने केन्द्रके विगत ४ वर्षका कार्य विवरण बताते हुए संस्कृतभाषा परीक्षाके महत्वपर प्रकाश डाला। तत्पश्चात् श्री नारायण स्वामीजीने वर्तमान भारतीय स्थितिका परिचय देते हुये तथा अपनी प्राचीन आर्य भाषा संस्कृतके प्रचारको अवश्यंभावी बताते हुये पारडी द्वारा संचालित इन परीक्षाओंकी सराहना की। इस केन्द्रसे अभीतक १०० परीक्षार्थियोंने जो लाभ उठाया उसकी भी उन्होंने भूरि भूरि प्रशंसा की। प्रत्येक परीक्षामें एक न एक छात्र इस केन्द्रसे विशेष योग्यता प्राप्त कर पारितोषिक भी प्राप्त करता रहा है, यह जानकर उपस्थित सज्जनोंने केन्द्रकी सराहना की।

अन्तमें सभाकी कार्यवाही समाप्त होनेसे पहले श्री शूरसेनजी द्वा साहित्य व व्याकरण शास्त्रीका संस्कृत साहित्यपर एक सारगर्भित भाषण हुआ। तदुपरान्त अध्यक्ष महोदयने अपने भाषणमें छात्रोंको संस्कृतभाषा अधिकसे अधिक सीखनेकी प्रेरणा दी और सभाका कार्यक्रम समाप्त हुआ।

बैतूल

गत तारीख १८ फर्वरी १९५५ को न्यु बैतूल हाईस्कूल, बैतूलमें स्वाध्याय मंडल (किल्ला पारडी) द्वारा आयोजित संस्कृत परीक्षाओंमें उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंका प्रमाण-पत्र वितरण समारोह संयोजित किया गया। अध्यक्षका आसन श्री गोकुल प्रसादजी वैद्य, अध्यक्ष, नगर-पालिका, बैतूलने ग्रहण किया। पुरस्कार तथा प्रमाणपत्र श्री गो. गो. देसाई जिलाध्यक्ष, बैतूलके करकमलों द्वारा वितरित किये गये।

समारोहका आरम्भ वन्देमातरम् गान द्वारा किया गया। सर्व प्रथम श्री धीरेन्द्रनाथजी वर्मा, प्रधान अध्यापकने केन्द्र व्यवस्थापकके विषयमें अपनी रिपोर्ट पढ़ी। श्री वर्माजीने अपनी रिपोर्टमें संस्कृत-भाषाके महत्वपर प्रकाश डालते हुये उसके पुनरुत्थानकी आवश्यकता बतलाई।

आपने कहा कि हमारे देशकी अनेक भाषाओंका उद्गम संस्कृतसे हुआ है। द्रविड-भाषाओंमें भी संस्कृतके शब्द प्रचुरतासे भरे हुये हैं। संस्कृतके प्रचारसे भारतके सभी लोग एक दूसरेके निकट आ जावेंगे। आपने यह भी बताया कि इस केन्द्रसे अभीतक स्वाध्याय-मंडलकी परीक्षाओंमें १३१ छात्र तथा १९ छात्रायें सम्मिलित हो चुकी हैं। इन छात्रोंमें इस वर्ष प्रारम्भिणी परीक्षामें प्रथम आनेपर श्री घनश्याम पंड्याको तथा प्रवेशिकामें प्रथम आनेपर श्री श्यामसुन्दर शर्माको मंडलकी ओरसे पुरस्कार प्रदान किये गये हैं। साथ ही केन्द्रको २० रु. ३ आनेकी पुस्तकें भी प्राप्त हुई हैं। अपने भाषणमें श्री वर्माजीने केन्द्रको उचित सहयोग देनेके उपलक्षमें सरकारी हाईस्कूलके प्रधान अध्यापक श्री मुले, नार्मल हाईस्कूलके सुपरिण्टेण्डेंट श्री जोशी, बालिका विद्यालयकी प्रधान अध्यापिका श्रीमती कविराज तथा सरकारी शालाके अध्यापक श्री राम विलासजी पुराणिक, एम. ए. बी. टी. को धन्यवाद दिया।

श्री गो गो. देसाई साहबने अपना भाषण संस्कृतमें ही दिया। आपने संस्कृत भाषाकी विपुल साहित्य-राशिपर प्रकाश डालकर उसके महत्वको बडे सुन्दर और सरल शब्दोंमें दर्शाया। संस्कृतमें भाषण समाप्त करके आपने हिन्दीमें भी बालकोंको कुछ उपदेश दिये। इसके पश्चात् श्री चिंतामणि चतुर्वेदीजीने भी संस्कृतके महत्वको दर्शाते हुए कुछ शब्द बालकोंके समक्ष कहे।

श्री देसाईने छात्र तथा छात्राओंको प्रमाण-पत्र तथा पुरस्कार वितरित किये। अन्तमें श्री गोकुल प्रसादजी वैद्यने एक संक्षिप्त भाषण दिया।

श्री वर्माजीके आभार प्रदर्शन तथा पान सुपारीके पश्चात् सभाकी कार्यवाही समाप्त हुई।

महेसाना

श्री न्यू प्रोग्रेसीव हाईस्कूलका २० वाँ वार्षिकोत्सव दिनांक १३।१४ फरवरीको मनाया गया। इस शुभवसरपर महेसाना केन्द्रसे 'संस्कृत' की परीक्षाओंमें उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंके प्रमाणपत्रोंका वितरण श्री एम. डी. माणेक (डिस्ट्रीक्ट जज्, महेसाना) के शुभ हाथों हुआ। प्रत्येक परीक्षाके सर्व प्रथम परीक्षार्थीको केन्द्रकी ओरसे पारितोषिक दिया गया।

संस्कृत परीक्षाओंके वर्ग

मई और जूनके ग्रीष्मावकाशमें स्वाध्यायमण्डलमें संस्कृत परीक्षाओंके (प्रारम्भिणीसे लेकर साहित्याचार्यतकके) वर्ग प्रारम्भ किये जारहे हैं।

स्वाध्याय-मण्डल द्वारा संचालित परीक्षाओंकी पद्धतिसे भारत एवं अफ्रीकामें जो संस्कृतका प्रचार हो रहा है वह दिनोंदिन व्यापक होता जा रहा है। इसका एकमात्र कारण यह है कि यह पद्धति अत्यन्त सरल है और बहुत कम समयमें संस्कृतका ज्ञान करा देनेमें सफल सिद्ध हुई है।

अतः जो भी व्यक्ति उक्त योजनासे लाभ उठाकर इन वर्गोंमें सम्मिलित होना चाहें वे अपने नाम तथा पतेके साथ मन्त्री, स्वाध्यायमण्डल, किल्ला-पारडी, जि. सूरतके पतेपर पत्रव्यवहार करें।

सूचना— १— निवास स्थान एवं शिक्षण व्यवस्था निःशुल्क रहेगी।

२— अध्ययनार्थीको भोजन-व्यय स्वयं करना होगा।

३— स्वीकृतिपत्र प्राप्त होनेपर ही अध्ययनार्थी यहाँ आकर रह सकेंगे; अतः अपने साथ स्वीकृतिपत्र लाना आवश्यक होगा।

४— ता० २५ अप्रैलतक प्रार्थनापत्र भेजे जा सकेंगे।

५— जाति, धर्म एवं आयु विषयक कोई प्रतिबन्ध न रहेगा।

महेशचन्द्रशास्त्री, परीक्षा-मन्त्री

ॐ

वेदमें दर्शाये
विविध प्रकारके राज्यशासन

वैदिक समयमें ऋषि लोग अनेक प्रकारकी राजकीय हलचलें करते थे और उन हलचलोंसे राजकीय परिवर्तनें होती थीं। मानव समाजकी अभ्युदय सिद्धी करनेकी अभिलाषासे राष्ट्रका निर्माण करना, राष्ट्रशासनमें नूतन पद्धतिसे परिवर्तन आवश्यक होनेपर करना और मानवोंका सुख बढानेके लिये जो जो करना आवश्यक है वह सब करना, यह ऋषियोंका उद्दिष्ट था। इसको देखनेसे यह पता चलता है कि, ऋषियोंने अनेक प्रकारके राज्यशासनके तन्त्र नाना देशोंमें निर्माण किये थे और नाना प्रकारके शासनके तंत्रोंका उन्होंने अनुभव भी लिया था। ये शासनके तंत्र कितने हैं इसका विचार यहां करना आवश्यक है। देखिये-

स्वास्ति। साम्राज्यं, भौज्यं, स्वाराज्य, वैराज्यं,
पारमेष्ठ्यं राज्यं, महाराज्यं, आधिपत्यमयं,
समन्तपर्यायी स्यात्, सार्वभौम· सार्वायुष
आन्तादापरार्धात्, पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया
एकराट्। ऐ० ब्रा० ८।१५

"(स्वस्ति) सब जनताका कल्याण हो। साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य राज्य, महाराज्य, आधिपत्यमय, समन्तपर्यायी ये पृथक् पृथक् राज्यशासनके विविध प्रकार हैं। सार्वभौम सम्राट् पूर्ण आयुतक जीवित रहे। समुद्रपर्यंत पृथिवीका एक राजा हो।"

इसमें अनेक राज्यशासनोंके नाम आगये हैं। ये सब राज्यशासन (स्वस्ति, सु+अस्ति) सब मनुष्यजाती सुखसे और आनन्दसे यहां रहे, इसलिये निर्माण हुए हैं। मनुष्य इस पृथिवीपर आनंदसे रहें, मानवोंमें परस्पर संघर्ष न बढे, यह इच्छा ऋषियोंके मनमें थी। इसलिये उन्होंने ये राज्यशासन निर्माण किये थे।

नाना राष्ट्रोंमें नाना प्रकारके राज्यशासन शुरु होनेके कारण, तथा नाना राष्ट्रोंके लोगोंका विविध कार्योंमें समागम होनेके पश्चात् परस्पर मतभेदोंका उत्पन्न होना संभव है। इसी तरह मतभेद हुए तो यह 'मेरा मत सत्य है।' ऐसा एक बोलेगा और दूसरा भी बोलेगा कि यह 'मेरा मत ही सत्य है।' जब ऐसा दोनों बोलने लगते है तब युद्ध उपस्थित होता है। इसलिये वेदमें 'ममसत्यं' यह युद्धका नाम दिया है।

त्वां जना ममसत्येषु इन्द्र
संतस्थाना विह्वयन्ते समीके॥
ऋ० १०।४२।४; अथर्व० २०।८९।४

'हे इन्द्र! लोग (ममसत्येषु) युद्धोंमें सहायार्थ तुझे बुलाते हैं और युद्धस्थानमें रहनेवाले वीर भी तुझे सहायार्थ बुलाते हैं।' यहां 'मम-सत्येषु' यह पद 'युद्धों' का वाचक आया है। जैसा व्यक्ति व्यक्तिमें 'यह मेरा मत सत्य है' ऐसा आग्रह करनेसे झगडे होते हैं, उसी तरह जातियोंमें और राष्ट्रोंमें भी इसी कारण युद्ध होते हैं। कई राष्ट्र जनतंत्रवादी होते हैं, कई राष्ट्र पूंजीवादी होते हैं, कई राष्ट्र उद्योगवादी रहते हैं। इनमें तांत्रिक मतभेद अवश्य रहता है। इस कारण झगडे होते हैं और वादविवाद होनेपर युद्ध भी शुरु होते हैं। अनेक राष्ट्रोंमें इस तरह युद्ध छिड जाते हैं। इन युद्धोंके कारण अनेक मानवोंका संहार होता है, राष्ट्रपर अनेक आपत्तियां आती हैं और मानवोंके कष्ट बढते हैं।

ये जनताके कष्ट देखकर, ज्ञानी मानवोंके अन्तःकरणोंमें दया उत्पन्न होती है, वे विचार करते हैं और इस निश्चयपर वे पहुंचते हैं, कि पृथक् पृथक् राज्यशासन रहनेसे ऐसे राष्ट्रीय युद्ध उत्पन्न होंगे ही, इस कारण—

समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्याः एकराट् ।

ऐ० ब्रा० ८।१५

' समुद्रपर्यंत जितनी पृथिवी है, उसपर एक ही राज्य-शासन हो,' पृथक् पृथक् राज्यतंत्र न हों। संपूर्ण पृथिवी-पर एक ही शासन होगा, तो शासन विषयक मतभेद नहीं होंगे, इसलिये युद्धादिक कष्ट जनताको भोगने नहीं पडेंगे। ऋषियोंका इतना विचार निश्चित होनेके लिये बडा समय लगा होगा, तथा तबतक बहुत ही युद्ध हुए होंगे। इतना अनुभव लेनेके पश्चात् ऋषियोंका निश्चय हुआ कि, संपूर्ण पृथिवीपर एक राजा तथा उसका एक संविधान होना चाहिये। ऐसा होनेपर विश्वमें शान्ति स्थापन हो सकती है। तबतक विश्वशान्ति अशक्य है ।

पृथिवीका संघराज्य

आज भी विश्वभरके नाना देशों और नाना राष्ट्रोंमें वार-वार युद्ध होनेके कारण जगत्के नेता लोगोंके मनोंमें यही बात आ गयी है कि, विश्वके लिये एक ही संघराज्य होगा, तो अच्छा है। आज तो संस्था इस कार्यके लिये रची गयी है, वह 'यू-नो' नामसे प्रसिद्ध है। 'विश्वके राष्ट्रोंका संघ' आज 'यू-नो' नामसे सबको मालूम है। इसके पूर्व भी ऐसी ही एक संस्था उत्पन्न हुई थी। परंतु वह युरोपके राष्ट्-वादियोंके स्वार्थके कारण टूट गयी। कदाचित् यह आजकी 'यू-नो' भी स्वार्थके कारण टूट जायगी तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं है। परंतु विश्वके नेता लोगोंके मनमें यही विचार आ रहा है कि जो विचार भारतके प्राचीन ऋषियोंके मनोंमें ५००० वर्षोंके पूर्व आया था।

इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन समयके ऋषियोंके हाथोंमें अनेक राष्ट्रोंका नियंत्रण करनेकी शक्ति आ चुकी थी। यदि ऐसा न होता, तो ' समुद्रपर्यंत जितनी पृथिवी है, उस सब पृथिवीपर एक राजा और एक संविधान हो ' ये विचार निर्बल लोग किस तरह बोल सकते हैं ? इसलिये आजकी 'यू-नो' के सदस्योंके हाथोंमें जितना बल आज है, उतना बल ऋषियोंके हाथोंमें ऋषिकालमें आया था, इसमें संदेह नहीं है। इसीलिये वे पृथ्वीका संघराज्य निर्माण करनेका विचार करते थे।

जगत्‌में पश्चिमकी ओर असुरोंके राज्य थे, असुर लोग असीरियाके, दानव लोग दान्यूब नदीके पासके, बैक्ट्रीयाके बक, इस तरह से पश्चिम भूविभागमें दैत्य वा असुर रहते थे। इनके-राष्ट्र अतिपूर्व कालमें उदित हुए थे। इसलिये इनको 'पूर्वं देवाः' कहा जाता है। देवजातिका उदय होनेके पूर्व-कालमें असुर जातीका उदय हुआ था। ये सब असुर पश्चिम दिशाके भूविभागमें ही रहते थे।

ये रक्षक थे। रक्षकोंके ही राक्षस बने। रक्षक ही कष्ट देने लगे तो वे राक्षस होते हैं। ये असुर पहिले रक्षाका कार्य उत्तम रीतिसे करते थे। पश्चात् इनकी नियत बिगड गयी और जनताका रक्षण न करते हुए जनताका भक्षण ये रक्षक लोग ही करने लगे इस कारण येही दुष्ट माने गये !! जो (पूर्वदेवाः) पहिले देव थे, दिव्य व्यवहार करते थे, वेही पीछेसे छल कपट करने लगे।

इस कारण लोगोंमें असुरोंके विषयमें घृणा पैदा हुई और त्रिविष्टपमें सुर जातीका उदय हुआ। यही देवजाती है। इनके उत्पन्न हो जानेके कारण असुरोंको ' पूर्वदेवाः ' (प्राचीन समयके देव) कहा गया और ये 'सुर' आधु-निक समयके देव हुए।

इसमें सहस्रों वर्षोंका इतिहास भरा है। एक जातिका उदय उत्थान उत्कर्ष और अपकर्ष तथा पतन होनेके लिये सहस्रों वर्ष लगते हैं। एक जातिका पतन होने लगा, तो दूसरी जातिका उत्थान शुरु होता है।

अब यहां देखना यह है कि असुरोंके गुरु ' शुक्राचार्य ' थे, वे भी 'कवि' नामसे प्रसिद्ध थे। ये ' भृगु ' ऋषिके पुत्र अथवा गोत्रज थे। ये असुरोंके गुरु थे। अर्थात् पश्चिम देशके असुर, राक्षस, दैत्य आदि राष्ट्रोंमें भी ब्राह्मण ही मंत्रीपदपर थे। इधर सुरराष्ट्रमें बृहस्पति देवगुरु करके प्रसिद्ध हैं। वह भी ब्राह्मण ही हैं। देवोंकी ओर भी ब्राह्मण मंत्री और असुरोंकी ओर भी ब्राह्मण ही मंत्री थे और पूर्व पश्चिम भूविभाग क्रमसे देवदानवोंमें विभक्त था और दोनों ओर ब्राह्मण ही मंत्रणा करनेवाले थे। इससे सिद्ध होता है कि सब पृथिवी ब्राह्मणोंकी मंत्रणामें थी। इसीलिये ये ब्राह्मण संपूर्ण पृथिवीके नेता थे। इस कारण ही वे राष्ट्रशा-सनोंके अनुभवसे मानने लगे थे कि समुद्रपर्यंतकी संपूर्ण पृथिवीपर एक ही राज्यशासन होना चाहिये। उनके अनु-भवने ही यह उनको बताया था।

इस तरहसे ' समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्याः एकराट् ' ऐसा जो ऋषियोंने कहा था वह उनके राज्यशासनके अनु-

भवका परिपाक था। सुरराज्यमें तथा असुरराज्यमें दोनों स्थानोंपर राज्यशासनका सब भार ऋषियोंपर ही होता था। युद्ध उपस्थित होनेपर वीर लोग लडते थे, पर बाकी सब प्रबंध ऋषिलोग ही किया करते थे। अन्दरका तथा बाहरका सुरक्षाका प्रबंध, सेनाकी रचना और उनके शस्त्र-अस्त्र आदिके सब प्रबंधकी सुव्यवस्थाका सब भार ऋषियोंपर था। इसलिये ऋषियोंको पृथक् पृथक् अनेक राष्ट्र और उनके विभिन्न शासन होनेपर युद्ध अटल हैं इस बातका अनुभव हुआ था। इस अनुभवके बलपर ये ऋषि कहने लगे थे कि '**समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्याः एकराट्**' सब पृथिवीपर एक ही राज्यशासन और उसका एक संविधान हो जायगा, तो ही ये युद्ध बंद होंगे और विश्वमें शान्ति स्थापन होगी। इस घोषणाके पूर्व कितने विविध राज्यशासनोंका अनुभव उन ऋषियोंने लिया था इसका थोडासा विचार यहां करना आवश्यक है।

पूर्व स्थानपर जो ऐ० ब्रा० का वचन दिया है, उसमें निम्नलिखित राज्यशासनोंके नाम आये हैं–

विविध प्रकारके राज्यशासन

१ साम्राज्यं– अनेक छोटे मोटे राज्य एक सम्राट्के शासनमें आते हैं और वह उन सबका एक शासक है ऐसा सब मानते हैं वह साम्राज्य कहलाता है। प्राचीन समयमें अपना साम्राज्य स्थापन करनेके लिये एक सामर्थ्यवान राजा अपनी सेनाके साथ एक घोडा छोडता था। घोडेके मस्तक पर एक आदेशपत्र रहता था। उसमें यह लिखा रहता था, कि 'हमारा साम्राज्यशासन मानो और हमारे मांडलिक बनकर हमें कर दे दो अथवा युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाओ।' जो छोटे छोटे राजा उसका साम्राज्य मानते थे, वे उसके मांडलिक बन जाते थे, और जो उसको नहीं मानते थे, वे युद्ध करनेके लिये तैयार हो जाते थे। पराभूत होनेपर वे मांडलिक बन जाते अथवा विजय प्राप्त होनेपर वह सम्राट् बनता था। इस तरह यह अश्वमेध करनेवाला यशस्वी होनेपर सम्राट् बनता था और बाकीके राजा उसके मांडलिक बन जाते थे। इसलिये कहा है—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः। श० प० ब्रा०

अश्वमेध करके सब राजाओंका पराभव करनेसे साम्राज्य होता है। ये अश्वमेध ऋषिलोग राजाओंसे करवाते थे और इस तरह युद्ध होते थे। इन युद्धोंमें किस तरह मनुष्य-वध, और धननाश होता है यह ऋषियोंके आंखोंके सामने होनेवाली बात थी। इसीलिये संपूर्ण पृथ्वीपर एक राज्य-शासन स्थापन करनेकी इच्छा वे करते थे।

२ भौज्यं– प्रजाजनोंके भोजनादि आवश्यक उपभोगोंकी सुव्यवस्था जहां राज्यप्रबंधके द्वारा की जाती है, उस राज्य-शासनका यह नाम है। प्रजाजनोंको काम मिले और काम करनेपर योग्य दाम मिले, तथा उससे उनका योगक्षेम अच्छीतरह चले। ऐसा हो रहा है या नहीं यह देखना राज्यशासनका कर्तव्य है। मनुष्यको रहनेके लिये घर, ओढनेके लिये वस्त्र, भोजनके लिये अन्न, पीनेके लिये शुद्ध जल, खुली हवा, बीमार होनेपर योग्य औषध, अन्दर और बाहरकी सुरक्षा, वृद्धावस्थामें काम करनेकी शक्ति न होनेपर भी योग्य प्रबंधसे उसका रहनसहन सुखसे होनेका सरकारी उत्तम प्रबंध होना चाहिये। यह जिस राज्यशासन पद्धतिसे होता है उस पद्धतिका नाम 'भौज्य' है।

३ स्वाराज्यं, स्वराज्यं– 'बहुपाय्यं स्वराज्यं' (ऋ. ५।६६।६) अनेक जनपदके नेताओं अथवा प्रतिनिधियोंकी अनुमतिसे जो राज्यशासन चलाया जाता है, उसको 'स्वराज्य शासन' कहते हैं। यह राज्यशासन स्वयं प्रजा करती है, अपने प्रतिनिधि वह प्रजा चुनती है। उनकी सभा होती है। वह समिति राज्यशासनके नियम निश्चित करती है और उस तरह जो राज्यशासन होता है वह स्वराज्य शासन कहलाता है। यह राज्यशासन 'बहुपाय्य' ही होना चाहिये। बहु संमतिसे ही यहांका शासन होना चाहिये।

४ वैराज्यं– (वि-राज्यं, वि-राज्, विगत-राजकं) (१) जहां एक शासक नहीं होता। कोई शासक अथवा शासकसभा जहां नहीं होती। सब लोग इकट्ठे बैठकर सबकी संमतिसे जो निर्णय होगा वह उस जातिके लोग मानते हैं। यहां कोई शासनकर्ता नहीं होता, सब अपनी जातिका निर्णय मानते हैं। राजाकी कल्पना उत्पन्न होनेके पूर्वकालमें सब लोग ऐसा ही करते थे। जहां राजा उत्पन्न नहीं हुआ, उस समय वे लोक ही अपना शासन करते थे। राजा नहीं, ग्राम नहीं, शासनपद्धति नहीं, ऐसी अवस्थाका यह वर्णन है। (२) विशेष प्रकारका राजा ऐसा भी इसका दूसरा अर्थ है।

५ पारमेष्ठ्यं राज्यं- (परमेष्ठी प्रजापतिः । अथर्व० ४।११।७, ८।५।१०, ९।३।११) परमेष्ठीका अर्थ परमश्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाला, प्रजापालनके श्रेष्ठ कार्यमें नियुक्त शासक। प्रजाजनोंसे नियुक्त होकर यह शासक बनता है और योग्य रीतिसे कार्य न कर सकनेपर शासकके स्थानसे निकाला भी जाता है।

६ राज्यं— (राज्ञः इदं) (१) जहां राज्य राजाकी अपनी निज संपत्ति है ऐसा माना जाता है। राष्ट्रका यह स्वामी समझा जाता है। यह स्वयंशासक होता है। इसकी आज्ञा होनेपर प्रजाजनोंको वह माननी पडती है। दूसरा भी इसका एक अर्थ है। (राजा प्रकृतिरंजनात्, तस्य इदं) (२) जो अपनी शासवकी श्रेष्ठतासे प्रजाको संतुष्ट रखता है, उसके शासनसे प्रजा संतुष्ट रहती है। जिसको ' राम-राज्य ' कहते हैं वैसा जिसका राज्य है। यह आदर्श राज्य-शासन है। प्रजाके हित करनेके लिये यहांका राजा अपना सर्वस्व अर्पण करनेके लिये तैयार रहता है।

७ महाराज्यं— बडा राज्य। छोटे छोटे अनेक राज्य पूर्णतासे विलीन होकर जो एक राज्य बनता है वह महा राज्य कहलाता है। महाराज्य बननेपर उसमें किसी भी विलीन हुए छोटे राज्यकी स्वतंत्र सत्ता नहीं रहती। जिस तरह भारतमें छ सौ रियासतें विलीन हो गयी हैं, जो पहिले पृथक् पृथक् थीं। इनके विलीन होनेसे अब भारत ' महाराज्य ' बन गया है। इनके महाराज्यमें विलीन हुए राज्यकी स्वतंत्र सत्ता नहीं रही है।

८ आधिपत्यमयं— अधिपतिका अर्थ अधिकारी है। अधिकारियोंके तन्त्रसे जहांका राज्यशासन चलता है। इस राज्यशासनमें अधिकारियोंकी संमति ली जाती है। प्रजाकी समतिका कोई मूल्य यहां नहीं रहता।

९ सामन्तपर्यायी— सामन्तका अर्थ माण्डलिक राजा। इन मांडलिक राजाओंके आधीन जहांका राज्य-शासन रहता है। सम्राट् और माण्डलिक राजा मिलकर जैसा चाहिये वैसा राज्य करते हैं। इस राज्यशासनमें भी प्रजाकी संमतिका कोई मूल्य नहीं रहता है।

पूर्वोक्त ऐतरेय ब्राह्मणके वचनमें इतने राज्यशासनोंका वर्णन है। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकारके राज्यशास नोंका वर्णन वेदोंमें है, उनका स्वरूप ऐसा है—

१० जान-राज्यं— लोगोंका राज्य, प्रजाजनोंका राज्य। जो राज्यशासन प्रजाजनोंकी संमतिसे प्रजाजनोंकी भलाईके लिये प्रजाजनोंके चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है। यहांका सब शासनाधिकार प्रजाजनोंके आधीन रहता है।

११ विप्र-राज्यं— (१) विशेष ज्ञानी लोग ही जहांका राज्यशासन चलाते हैं। (२) ब्राह्मणों अथवा धर्मगुरु-ओंके आधीन जहांका राज्यशासन होता है, (३) इसीका अर्थ कुछ कालके पश्चात् ' यज्ञ ' ऐसा हुआ था।

१२ ' समर्य-राज्यं- (१) अर्य 'का अर्थ ' धनपति वैश्य ' है। धनपति, पूंजीपति, श्रेष्ठ वैश्योंके हाथोंमें जहांका राज्यशासन होता है। (२) अथवा श्रेष्ठ समझे जानेवाले भूमिके स्वामी, संमान्य कुलोंमें जन्मे, तथा इसी तरह जो जन्मसे श्रेष्ठ समझे जाते हैं उनके आधीन जो राज्यशासन होता है वह राज्य इस नामका धारण करता है।

१३ अधिराज्यं= दूसरे निर्बल छोटे छोटे राज्य जहां रहते हैं और नाममात्र शासन करते हैं, परंतु उनपर एक बलाढ्य शासकका अधिकार चलता है। यह निकृष्ट शासन है क्योंकि इस राज्यमें छोटे राज्योंमें जो शासन चलता है, उसमें प्रजाजनोंके क्लेशोंको कोई मर्यादा नहीं होती। यहां छोटे शासकोंको पूछनेवाला कोई नहीं रहता।

इन सब राज्यशासनोंका पूर्णतासे विचार करनेके लिये बडा स्थान और काल लगेगा। इतना स्थान और काल अपने पास नहीं है। इसलिये यहां हम इनमेंसे प्रत्येक शासनके गुणों और दोषोंका विचार नहीं करेंगे। परतु अपने प्रचलित विषयके लिये जिनका विचार करना अत्यंत आवश्यक है उतना विचार ही हम यहां करेंगे।

उत्तम साम्राज्य

साम्राज्यका अधिकार हाथोंमें आनेसे घमड उत्पन्न होती है और ऐसे दो घमंडी सम्राट् पास पास आ गये, तो वे किसी न किसी निमित्तसे एक दूसरेके साथ युद्ध उत्पन्न करके मनुष्योंका संहार करते हैं। ऐसा न हो और दो सम्राट् एकत्र आगये तो भी उनमें प्रेम बढे और किसी तरहका झगडा न हो यह आदर्श गृत्समद ऋषिके एक मंत्रमें बताया है, वह मंत्र यहां देखिये—

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती।
सचेते अनवह्वरम् ॥ ऋ० २।४१।६

'वे दोनों सम्राट् (दानुनस्पती) दान देनेवाले हैं तथा वे दोनों (अनवह्वरं सचेते) कुटिल व्यवहार न करनेवालोंके साथ उत्तम संबंध रखते हैं।' अर्थात् कुटिलताका व्यवहार करनेवालोंके साथ वे अप्रसन्न रहते हैं, परंतु जो सरल व्यवहार करनेवाले सज्जन होते हैं, उनको वे सम्राट् अच्छी तरह सहायता करते हैं, उनको दान देते हैं, उनका रक्षण भी वे करते हैं।

सम्राट् ऐसा आचरण करें। सरल व्यवहार करनेवालोंको जो सहायता करते हैं, वे कदापि आपसमें लडाई, झगडे नहीं करेंगे। लडाई, झगडे करनेवाले कुटिल व्यवहार करनेवाले ही होते हैं। यदि ऐसे सम्राट् हुए तो उनका साम्राज्य प्रजाको कष्ट देनेवाला कदापि नहीं होगा। सम्राटोंका यह आदर्श वेदने लोगोंके सामने रखा है।

इस संबंधमें एक और मंत्र यहां देखिये—

ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे।
देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ ऋ० १।१३६।१

'इन दोनों सम्राटोंकी प्रशंसा प्रत्येक यज्ञमें होती है। (अथ एनोः क्षत्रं) और इनका क्षात्रबल (कुतः च न न आधृषे) कहींसे भी थोडासा भी कम नहीं होता और इनका (देवत्वं नू चित् आधृषे) देवत्व भी किसी तरह कम नहीं होता।'

यहां दो बातें महत्त्वपूर्ण कही हैं। वे दो बातें ये हैं—

(१) एनोः देवत्वं न आधृषे- इन सम्राजोंका देवत्व कम नहीं होता। इनका देवत्व, विबुधत्व सुस्थिर रहता है। और—

(२) एनोः क्षत्रं न कुतः च न आधृषे - इन सम्राजोंका क्षात्रतेज किसी तरह किसी दृष्टिसे भी कम नहीं होता।

अर्थात् इन सम्राजोंकी शत्रुको दूर करनेकी शक्ति कम नहीं होती, अर्थात् वे निर्बल नहीं होते, इनका शत्रुको दूर करनेका सामर्थ्य किसी तरह भी कम नहीं होता। इस कारण वे अपने साम्राज्यमें शान्ति और सुरक्षा अच्छी प्रकारसे रखते हैं। इसलिये प्रजा अच्छी प्रगति करती है। जहां बल होता है वहां घमण्ड होती है और इससे राक्षसभाव बढते हैं। परंतु इन सम्राटोंमें देवत्व भी अच्छी तरह रहता है, कम नहीं होता। देवत्वके गुणबोधक पर्याय ये हैं— (विबुधत्व) ज्ञानी होनेका भाव, (सुमनस्त्वं) उत्तम मनसे युक्त होना, (अस्वप्नत्व) सुस्त न होनेका भाव, आलस्ययुक्त न होना, सदा उद्योगशील रहना है। ये देवत्वके लक्षण हैं। ये देवत्वके गुण उन सम्राटोंमें रहते हैं इसलिये वे उच्च गुणवाले सम्राट् होते हैं। ये आदर्श सम्राट् हैं। वेदमंत्रोंने लोगोंके सामने ये आदर्श सम्राट् रखे हैं। ऐसे सम्राट् होंगे, तो साम्राज्य बुरा है ऐसा कोई नहीं कह सकेगा।

सम्राटोंका अधःपात सामर्थ्य बढने और देवत्व घटनेके कारण होता है। सामर्थ्य बढने और उसके साथ राक्षसीभाव बढनेके कारण सम्राट दुःखदायी होते हैं। यह दोष दूर करनेके लिये वेदमंत्रने क्षात्रतेजके साथ देवत्वके गुण भी बढानेका आदर्श रखा हैं। सम्राटोंकी शक्तिका मद देवत्वकी पवित्रतासे यहां दूर किया है। यह सावधानीकी वेदकी सूचना निःसंदेह प्रशंसनीय है।

ऊपर अनेक प्रकारके राज्यशासन दिये हैं। इन सब प्रकारके राज्यशासनोंके साथ ऋषियोंका अच्छी तरह परिचय था। वे इन सब प्रकारके राज्यशासनोंको चलाते ही थे। इसलिये इन शासनोंके साथ वे अपरिचित तो निःसंदेह नहीं थे। इसलिये इन राज्यशासनोंमें कौनसे राज्यशासन प्रजाका हित करनेवाले हैं और कौनसे राज्यशासनोंमें कौनसे दुःख उत्पन्न होनेकी संभावना है, इस संबंधका ज्ञान उन ऋषियोंको था। इन ऋषियोंने इन सब प्रकारके राज्यशासनोंकी परीक्षा जनहितकी कसौटीसे की थी। इसीलिये उन्होंने 'जानराज्य' अथवा 'स्वराज्य' नामक राज्यशासनकी व्यवस्था जनताका हित अधिक कर सकनेके कारण उन्होंने अधिक श्रेष्ठ है ऐसा निश्चय किया था। इसीलिये उन्होंने ऐसा कहा था कि—

वयं सूरयः व्यचिष्ठे बहुपाय्ये स्वराज्ये
आयतेमहि। (ऋ. ५।६६।६)

'हम सब विद्वान् मिलकर विस्तृत और बहुतोंकी संमतिसे जहांका राज्यशासन चलाया जाता है, उस स्वराज्यमें जनताकी भलाई करनेके लिये हम अपने प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करेंगे।' ऐसी घोषणा वे करते थे। राज्यशासनके संबंधमें उनकी भूमिका कैसी थी वह अब देखिये—

राज्यशासनविषयक ऋषियोंकी भूमिका

ऋषियोंके मनमें राज्यशासनके विषयकी भूमिका क्या थी यह भी एक मननीय प्रश्न है। जो वेदमंत्रका आदेश था वही ऋषियोंके मनमें स्थायीरूपसे घर करके रहा हुआ भाव था। कोई कार्य करना हो तो कर्ताके उद्देश्यके अनुसार वह भला या बुरा होता है। किसीने स्वार्थसाधन करनेके उद्देश्यसे किसीका वध किया, तो वह वधकर्ता मृत्युदण्डके लिये योग्य समझा जाता है। परंतु किसीने राष्ट्रको स्वतंत्रता देनेके पवित्र उद्देश्यसे धर्मयुद्धमें सैकडों मनुष्योंका वध किया, तो उसका संमान सब करते हैं और उसके उस कार्यके काव्य बनते हैं। भविष्यकालमें वह आदर्श वीर बनता है। इसका कारण उसका उद्देश्य उच्च था यही एकमात्र है। इसलिये राज्यशासन करनेमें ऋषियोंका उद्देश्य क्या था यह देखना आवश्यक है।

ऋषि यमनियम पालन करते थे, संयमयुक्त जीवन व्यतीत करना उनके जीवनका मुख्य उद्देश्य था। इसलिये ऋषिलोग स्वार्थवश होकर राज्यशासनमें कोई ऐसा दोष निर्माण करेंगे इसका संभव ही नहीं था। मनुष्य स्खलनशील है इसलिये उनसे किसी समय कुछ दोष हो भी जाता है, वह क्षमा करनेयोग्य है। परंतु उसने जानबूझकर पाप करना नहीं चाहिये। इसलिये राज्यशासन कोई भी हो, उसके अनुष्ठान करनेके समय कर्ताके मनमें कौनसी भूमिका रहती है वह देखनी चाहिये। ऋषियोंके मनमें यह भूमिका थी—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥१॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥
ऋ० १०।९०

सहस्रबाहुः पुरुष सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥१॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥६॥
अथर्व० १९।६

स भूमिं सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥१॥
वा. य. ३१, काण्व० ३५

'एक पुरुष है, उसको हजारों मस्तक, हजारों आंखें, हजारों बाहू, हजारों पेट और हजारों पांव हैं। वह इस भूमिपर चारों ओर व्यापकर रहा है। ब्राह्मण इसके मुख हैं, क्षत्रिय इसके बाहु हैं, वैश्य इसका मध्यभाग अथवा ऊरूका प्रदेश है और शूद्र इसके पांव हैं।' अर्थात् ज्ञानी, वीर, कृषिकर्ता तथा व्यापारकर्ता और कर्मचारी ये चार प्रकारके लोग मिलकर इस पुरुषके सिर, बाहु, पेट और पांव हैं। सब मानवसमाजमें व्यापनेवाला यह पुरुष है। पृथ्वीपर जो मानव जाति है वह सब मिलकर यह पुरुष होता है। मानव समाजरूपी यह पुरुष है।

जनतारूपी पुरुष

इस पृथ्वीपर जितने मानव हैं, उन सबका मिलकर यह एक ही पुरुष है। इन मानवोंमें कई बुद्धिका कार्य करते हैं, कई रक्षणका कार्य करते हैं, कई कृषि और व्यापार व्यवहार करते हैं, कई कलाकौशल्य करके रहते हैं अथवा इनकी सहायता करनेके कार्य करते हैं। ये सब इस मानवसमाजरूपी पुरुषके शरीरके अवयव हैं।

यह वैदिक वर्णन ठीक तरह ध्यानमें आजायगा, तो मानवसमाजके सम्बन्धकी वैदिक कल्पना समझमें आ सकती है। सब मानवसमाज यह एक ही पुरुष है। एक पुरुषमें जिस तरह सिर, बाहु, पेट और पांव होते हैं, वैसे ही ज्ञानी शूर, कृषक और कर्मचारी राष्ट्रमें हैं। पर ये सब मिलकर एक ही शरीर है। करोडों व्यक्तियां मिलकर एक विश्वदेह होता है, यह बात यहां मुख्य है।

जिस तरह पांवको कांटा लगा तो सब शरीर दुःखी होता है, पेटमें दुःखने लगा तो सब शरीरको पीडा होती है, सिरमें दर्द होनेसे सब शरीरको क्लेश होते हैं और बाहुपर आघात होनेसे सब शरीर दुःखी होता है, उसी तरह यहां राष्ट्रमें इतनी एकताकी भावना रहनी चाहिये। ज्ञानीको किसीने सताया, क्षत्रियोंको कष्ट हुआ, वैश्योंको क्लेश हुए अथवा शूद्रोंको पीडा हुई तो सब राष्ट्रका राष्ट्र दुःखी होना चाहिये और उसकी सहायतार्थ उठकर खडा होना चाहिये। यह मानवसमाजकी एक ही मूर्ति है, एक ही शरीर है ऐसी भावना होनी चाहिये। जैसी एक शरीरमें अनेक अवयव विभिन्न होनेपर भी सब शरीरकी मिलकर एक संवेदना होती है, एकात्मता होती है, किसी अवयवको दुःख होनेपर सब अवयवोंको अर्थात् सब शरीरको ज्वर होता है, वैसी राष्ट्रमें और पृथ्वीपरके मानवसमाजमें एकात्मता होनी चाहिये। ऋषि इस एकात्मताका अनुभव करते थे और इस एकात्मताकी भावनासे राष्ट्रोंका संचालन और शासन करना चाहते थे।

उक्त मंत्रोंमें ' स पुरुषः भूमिं विश्वतः वृत्वा । ' अथवा ' स पुरुषः भूमिं सर्वतः स्पृत्वा ' कहा है। अर्थात् यह पुरुष पृथ्वीके चारों ओर है। राष्ट्ररूपसे यह पुरुष सब पृथ्वीपर है, मानव समाजरूपसे यह पुरुष सब पृथ्वीके चारों ओर है। यह पुरुष ही विश्वात्माका विश्वदेह–कारणदेह-रूपी मानवरूपमें प्रकटीकरण है।

विष्णु-सहस्र-नाममें ' विश्वं विष्णुः ' अर्थात् यह विश्व ही विष्णु है ऐसा प्रारंभमें ही कहा है। वही बात इस पुरुष सूक्तमें कही है। सूर्य, चन्द्र आदि देवताएं उस पुरुषके देहके अवयव हैं और ब्राह्मणादि लोग भी उसी पुरुषके देहके अवयव हैं, इसीका अर्थ ही यह विश्व उस विष्णुका रूप है ऐसा होता है।

यह सपूर्ण मानवसमाज मिलकर एक ही विराट् पुरुषका देह है ऐसा मानकर ही मनुष्योंको अपना सब व्यवहार करना चाहिये। सब मानवजातिका जो एक संघ है वही यह विराट् पुरुष है। यह विचार मनमें सुस्थिर रखना चाहिये। जब यह विचार मनमें रहेगा, तभी ऋषियोंकी राज्यशासन पद्धतिकी ठीक ठीक कल्पना हो सकती है। पृथिवीपरकी संपूर्ण जनता मिलकर एक देह है यह मानकर ही (समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्याः एकराट्) सब समुद्रपर्यंत पृथ्वीपरके मानवसमाजका राज्यशासन एक राजा करे और यह राज्यशासन ' सब लोगोंका मिलकर एक शरीर है ' ऐसी एकत्वकी भावना मनमें रखकर होना चाहिये। शासकोंके मनमें तथा लोगोंके मनमें यह एकात्मताकी भावना सर्वदा जाग्रत रहनी चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य पृथक् है ऐसा मानकर जो शासन होगा उसमें एक दूसरेको ठगनेका भाव रहेगा। परंतु जो शासन-व्यवहार सबका मिलकर एक ही जीवन है ऐसा मानकर होगा, उसमें सबके ऐकात्म्यकी भावना जाग्रत रहनेसे कोई किसी दूसरेको खानेका यत्न नहीं करेगा। क्योंकि इस एकात्मभावनामें ' पृथक् ' भाव ही नहीं रहता।

मनुष्य स्थूल और सूक्ष्म शरीरकी दृष्टीसे पृथक् है परन्तु सबका कारणशरीर एक होनेसे कारणशरीरकी दृष्टीसे सबकी एकात्मता है। इस एकात्मताका विचार ऋषियोंकी दृष्टिमें सदा था। सबका कारणशरीर एक होनेसे सबका मिलकर कारणदेह एक ही है और इस कारण सब मानव मिलकर वस्तुतः एक विश्वदेहमें ही हैं। भिन्नता स्थूल-देहमें और कारणदेहमें सबकी अभिन्नता है। बद्ध बुद्धिवाले स्थूल दृष्टीसे भिन्नत्व देखते हैं, परन्तु ज्ञानकी दृष्टिसे देखनेवाले कारणदेहकी एकतासे सबको एक ही देहमें देखते हैं।

कार्यक्षेत्र शासकोंके सामने छोटा हो या बडा हो; उसमें एकात्मभाव जनताके शासनकार्य करते समय देखना चाहिये। ग्रामाधिकारी ग्रामकी जनताकी एकात्मताका अनुभव करके अपना कार्य करे। राष्ट्रका शासक राष्ट्रमें रहनेवाले सब मानवोंकी एकता देखें और उनका शासन करें। शासनका क्षेत्र छोटा हो या बडा हो, सब स्थानमें सब मानवोंका मिलकर एक शरीर है ऐसा भाव मनमें रखकर उनका शासन करना चाहिये। ऋषियोंके राज्यशासनमें यह मुख्य बात है।

शरीरमें सिर, हाथ, पेट और पांव विभिन्न होते हुए भी उनका मिलकर एक शरीर है, इसलिये उन अवयवोंको परस्पर एकात्मभावसे और परस्परके अभेदसे व्यवहार करना चाहिये। वही बात राष्ट्रमें विभिन्न कर्म करनेवालोंने अपने व्यवहारमें करनी चाहिये और हम सब मिलकर एक हैं ऐसा मानकर सबका हित करनेमें दक्ष रहना चाहिये।

जिन लोगोंका राज्यशासन करना है उनकी संख्या छोटी हो अथवा बडी हो, उसमें ज्ञानी, शूर, कृषक और कर्मचारी रहेंगे ही। ये भेद स्वाभाविक हैं, कृत्रिम नहीं हैं। क्योंकि ये स्वाभाविक मानवी प्रवृत्तियां हैं, ये कृत्रिम या बनावटी भेद नहीं है। मानवकी जन्मतः ज्ञानप्रवृत्ती या वीरवृत्ति रहती है। यह बदलती भी नहीं। इसीलिये इस प्रवृत्तिको स्वाभाविक तथा नैसर्गिक कहते हैं।

प्रत्येक राष्ट्रमें ज्ञानी, शूर, कृषक, व्यापारी, कर्मचारी ये लोक रहते हैं उसी तरह वन्य जातिके भी लोग रहते हैं। ये सब लोग मिलकर ही राष्ट्र होता है। ये सब लोग मिलकर एकात्मभावसे राष्ट्रका एक देह होता है। वही राष्ट्रपुरुष है। सब पृथिवीके चारों ओर यह मानव-संघरूप पुरुष है। जो इस एकात्मताकी कल्पनाको जानेंगे वे ही ऋषियोंकी राज्यशासन पद्धतिको ठीक तरह जान सकते हैं।

शरीरमें राष्ट्र और राष्ट्रका शरीर

मनुष्यका शरीर एक बडा राष्ट्र है और बडा राष्ट्र भी

एक शरीर ही है। देखिये— एक शरीरमें करोडों अणुजीव होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक अणुजीव स्वतंत्र रीतिसे जन्म लेता, वहां रहता और अन्तमें मर भी जाता है। यह अणुजीवका जनन और मरण सतत चल रहा है। सात वर्षोंकी अवधीमें इस शरीरमें रहनेवाले सब अणुजीव मरते हैं और उनके स्थानोंपर नये आकर बैठते हैं। इस तरहका यह शरीर मानो ११ कोटी अणुजीवोंका एक राष्ट्र ही है अथवा यह एक राज्यशासन ही यहां चल रहा है।

इसी तरह ४० कोटी प्रजाजनोंका यह हमारा भारतराष्ट्र है। इस राष्ट्रमें हजारों मानव प्रतिदिन जन्मते और वैसे ही हजारों मानव प्रतिदिन मर भी जाते हैं। यह जन्म और मरण जैसा अणुजीवोंका शरीरमें हो रहा है वैसा ही राष्ट्रमें मानवोंका हो रहा है। तथा ऐसा ही सब पृथ्वीपरके मानवसमाजमें हो रहा है। यह समानता व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और अखण्ड मानवजातिमें है और यह समानता देखने योग्य है। अतः वेद कहता है—

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम्। अथर्व०

" जो शरीरमें ब्रह्मको देखते हैं वे परमेष्ठी प्रजापतिको जान सकते हैं।" शरीरका और विश्वका ज्ञान एक ही पद्धतिसे होता है। इसलिये शरीरमें राज्य किस रीतिसे चल रहा है यह प्रथम देखना आवश्यक है।

शरीरमें सहकार्यका आदर्श

इस शरीरमें जो परस्पर सहकार्य हो रहा है वह मानवी समाजके लिये परम आदर्शरूप है। वह कैसा हो रहा है वह देखिये- प्रथमतः दूसरे आंख किसी सुन्दर पके फलको देखते हैं। पांव इस शरीरको उस फलके वृक्षतक ले जाते हैं, हाथ उस फलको तोडकर अपने हाथोंमें लेते और मुखकी ओर देते हैं। मुख उसको चबाकर खाता है और पेटको देता है। पेट उसका पाचन करता है और उसका रक्त बनता है और वह रक्त संपूर्ण शरीरमें घुमाया जाता है और हरएक इंद्रिय और अवयवके पोषणमें वह लगता है। शरीरका सब इंद्रियसमूह और अंगसमूह इससे परिपुष्ट होता रहता है। इस तरह इस शरीररूपी राष्ट्रमें यह परस्पर आदर्श सहकार्य चल रहा है। इस सहकार्यसे ही यह शरीर स्वस्थ तथा नीरोग रहता है और दीर्घायु भी इसीसे प्राप्त करता है।

यदि यह सहकार्य बंद हो जायगा, तो शरीरमें रोग हुआ है ऐसा सिद्ध होगा। पेटमें गया अन्न पेटमें ही रहा, उसका पचन नहीं हुआ तो पेट फूल जाता है। पेटके स्वार्थीसे सब शरीरको पीडा होती है। रक्त शरीरभर नहीं घूमा तो जहां वह रुका रहता है, वहां सूजन हो गयी है ऐसा कहते हैं और सूजनसे फूला हुआ भाग काटकर दूर करना पडता है। इसलिये सहकार्यसे रक्तका अभिसरण होता रहा और सब अंगोंमें वह पोषण द्रव्य बांटा गया तो ही इस परस्पर सहकार्यके कारण शरीर स्वस्थ है ऐसा समझा जाता है। ऐसा न हुआ तो वहां रोग हुआ है ऐसा सिद्ध होता है। अर्थात् उत्तम सहकार्य होनेका अर्थ स्वास्थ्य है और सहकार्य बंद होनेका अर्थ रोगी होना है। परस्पर सहकार्य उत्तम रीतिसे होते रहना ही सुखमय जीवनका तत्त्व है और असहकार्य होना दुःखका मूल है।

राष्ट्रके सुखपूर्ण जीवनका तत्त्व

राष्ट्रका जीवन यदि सुखपूर्ण करनेकी इच्छा है तो उस राष्ट्रमें उत्तम सहकार्य होता रहे ऐसा करना चाहिये। राष्ट्रमें जो ज्ञानी हों वे अपना ज्ञान दूसरोंको देकर उनको ज्ञानी बनावें, जो शूरवीर हैं वे अपने राष्ट्रका उत्तम संरक्षण करके राष्ट्रमें शान्ति तथा सुरक्षितता रखे, जो कृषिवल हैं वे उत्तम यत्न करके अपने राष्ट्रमें उत्तम धान्य उत्पन्न करें, व्यापारी लोग उस धान्यको देशदेशान्तरमें ले जाकर व्यापार करें और धन कमावें, तथा उस धनसे नाना प्रकारके कारखाने करके उपयोगी वस्तुओंको उत्पन्न करें और जनताका सुख बढावें। जो कारीगर हैं वे अपनी कारीगरीसे सुख देनेवाले पदार्थ निर्माण करके लोकोंका सुख बढावें। इसमें दूसरोंको लूटकर स्वयं धनी बननेका आसुरीभाव न रहे, परंतु जनताकी सेवा करनेका सहकार्यका भाव हो। दूसरोंकी सहायता करके अपने लिये लाभ प्राप्त करनेका भाव हो। जो व्यवहार करे वह लाभ भी लेवे, परंतु उस लाभ लेनेके लिये विश्वासेवाकी मर्यादा हो। इस तरह राष्ट्रकी सुखसंपत्तिकी वृद्धि इस तरहके परस्पर सहकार्यपर अवलंबित है।

यदि किसी राष्ट्रमें यह सहकार्य बंद हुआ, प्रांतिक, भाषिक और जातीय आदि भेद बढ गये, व्यवहारमें कार्य करनेवालोंमें स्वार्थ बढ गया और उस प्रमाणसे परस्पर सहकार्य कम हुआ, तो उस राष्ट्रमें आपसके द्वेष बढकर निःसंदेह दुःख बढ जायगा।

इतिहासमें हम यही देख रहे हैं। कौरव-पाण्डवोंका युद्ध अथवा रामरावणका युद्ध किंवा आधुनिक युद्ध ये सबके सब विवाद आपसकी सहकारिता विनष्ट होनेसे ही होते हैं। सहकार्य कम हुआ, स्वार्थका प्रमाण बढ गया तो ये भयानक युद्ध शुरू होते हैं। यह न हो और सब सुखी हों ऐसी यदि सची इच्छा मनमें हो, तो सब वर्गके लोगोंमें उत्तम सहकार्यकी भावना बढानी चाहिये।

राजाका आदर्श

'जो मनुष्यके शरीरमें ब्रह्मको जानता है वह विश्वमें रहे ब्रह्मको जानता है।' ऐसा अथर्ववेदके मंत्रने कहा है वह सत्य है। अपने राष्ट्रका राज्यशासन कैसा होना चाहिये? इसका उत्तर ऐसा है कि, जैसा नीरोग और स्वस्थ शरीरके अंगों और अवयवोंमें स्वाभाविक रीतिसे सहकार्य होता है, वैसा सहकार्य राष्ट्रके सब वर्गोंमें होना चाहिये और राष्ट्रके वर्गोंमें संघर्ष उत्पन्न नहीं होने चाहिये इस पद्धतिसे राज्य-शासन होना चाहिये। राज्यशासनका अर्थ बाह्य शत्रुसे संरक्षण करनेवाली संस्था इतना ही नहीं है, प्रत्युत सब प्रांतों, सब जातियों और सब वर्गोंमें उत्तम सहकार्य हो, ऐसी स्थायी सुव्यवस्था राज्यशासन द्वारा होनी चाहिये तथा संघर्ष दिन ब दिन कम होने चाहिये। उत्तम राज्य-शासन यह है।

सब जनता मिलकर एक शरीर

इस समयतक जो विचार हमने किया, उससे यह सिद्ध हुआ कि " राष्ट्रकी सब जनता मिलकर एक शरीर है " ऐसी भावना राष्ट्रमें रहनी चाहिये। एक शरीरमें जिस तरह सब अंगोंका सहकार्य होता है, उस तरह राष्ट्रके अन्तर्गत सब जनतामें उत्तम सहकार्य होना चाहिये। ऐसा सहकार्य जहां होगा वही राष्ट्र जीवित रहेगा और अत्यंत सुखसे युक्त भी होगा। ऋषियोंने यह सिद्धान्त राष्ट्र-शासनके विषयमें निश्चित किया था।

राजाको प्रजाका आश्रय

और एक सिद्धान्त वेदमंत्रोंने राष्ट्रके शासनके विषयमें कहा है वह सबसे महत्त्वका है। वह सिद्धान्त यह है-"राजा और प्रजा, शासक और शासित, इनमें मुख्यतः किसका किसको आधार है?" इस विषयमें वेदका कहना यह है-

पृष्ठीर्मे राष्ट्रं उदरमंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी
ऊरू अरत्नी जानुनी, विशो मे अंगानि सर्वतः।
जंघाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि, विशि राजा
प्रतिष्ठितः ॥९॥ वा. यजु. २०

राजा कहता है कि- " मेरी पीठ राष्ट्र है, मेरा पेट, कंधे, गर्दन, चूतड, जांघें, घुटने, हाथ आदि सब अवयव मेरे प्रजाजन ही हैं। जंघा और पांवके रूपसे मैं धर्म ही हूँ अर्थात् धर्मके आधारपर मैं रहा हूँ। इस रीतिसे प्रजा-जनोंमें राजा प्रतिष्ठित हुआ है। अर्थात् प्रजाके आधारसे राजा रहता है।"

प्रजा राजाका शरीर है।

'विशः मे अंगानि सर्वतः' प्रजाजन ही मेरे शरीरके सब प्रकारसे अंग हैं। अर्थात् मैं प्रजाजनोंसे पृथक् नहीं हूँ। प्रजाजन ही मेरा शरीर है। प्रजाजन ही मेरे शरीरके अंग और अवयव हैं।

'विशि राजा प्रतिष्ठितः' प्रजाजनोंके आधारसे राजा रहता है। प्रजाजन ही राजाका सच्चा आश्रय है। प्रजा ही राजाका प्रतिष्ठान अर्थात् आश्रयस्थान है। राजा न हो तो प्रजा रहती है, पर प्रजा न हो तो राजाका अस्तित्व भी नहीं हो सकता है। प्रजाका आश्रय राजाको न मिला तो राजा राजगद्दीपर टिक नहीं सकता।

प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे ...
प्रति तिष्ठामि यज्ञे। वा. यजु. २०

'प्रत्येक शौर्यके कार्यमें मैं रहता हूं। प्रत्येक राष्ट्र रक्षणके कार्यमें मैं रहता हूं। राष्ट्रहित करनेके प्रत्येक कार्यमें मैं रहता हूं। प्रत्येक यज्ञमें मैं भाग लेता हूं।'

राष्ट्रका राजा राष्ट्ररक्षणके कार्यमें, राष्ट्रका हित करनेके कार्यमें, यज्ञकार्यमें अपना जो कर्तव्य है वह करता रहे। कभी इसमें प्रमाद न करे, आलस्यसे पीछे भी न रहे। जो जो कार्य राष्ट्रके अभ्युदयके लिये करना आवश्यक है वे सब कार्य राजा करता रहे। तथा-

लोमानि प्रयतिर्मम त्वङ् म आनतिः आगतिः।
मांसं म उपनतिः वस्वस्थि मज्जा म आनतिः॥
वा० यजु० २०

'राष्ट्रोद्धारके सब प्रयत्न करना ये मेरे बाल हैं। मेरी नम्रता, मेरी त्वचा, मांस, अस्थि और मज्जा है।' जैसे बाल शरीरसे सहज ही बाहर आकर बढते हैं, वैसे राष्ट्रोद्धारके लिये प्रयत्न सहजहीसे होते रहने चाहिये। इसी तरह राजा तथा राज्यशासनके अधिकारीजन इनमें नम्रता रहनी

चाहिये। लापर्वाही, क्रोध, उद्दतभाव नहीं रहना चाहिये। प्रजाके विषयमें विनम्रभाव धारण करना जैसा राजाको तथा अधिकारियोंको भी आवश्यक है।

पाप न करना

यदि दिवा यदि नक्तं० ॥ १५ ॥
यदि जाग्रत् यदि स्वप्ने० ॥ १६ ॥
यत् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये।
यत् शूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं
यदेकस्याधिधर्मणि तस्यावयजनमसि ॥

वा० यजु० २०

'दिनमें अथवा रात्रीमें, जाग्रतीमें अथवा स्वप्नमें किंवा निद्रामें, ग्राममें, अरण्यमें, सभामें अथवा इन्द्रियोंके संबंधमें हमसे जो पाप हुआ होगा, जो पाप व्यक्तिसे हुआ होगा और संघशः हुआ होगा, धर्मके ठीक तरहसे पालन न होनेके कारण जो पाप हुआ होगा, उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये और वैसा पाप फिर न हो ऐसा प्रबंध करना चाहिये।'

राज्यशासनके कार्य, सभासमितिके कार्य तथा अन्यान्य प्रजाकी उन्नतिके कार्य जहांतक हो सके वहांतक निर्दोष करने चाहिये। शिथिलता, आलस्य तथा उदासीनता आदि कारणोंसे प्रमाद नहीं होने चाहिये।

यहांतक दिये मंत्र यह भाव बता रहे हैं कि राजा और प्रजाजन इनका संबंध शरीरके अवयवोंका जैसा संबंध है। शरीरमें इन्द्रिय ये अधिकारी हैं, प्राण अवैतनिक स्वयंसेवक हैं, शरीरके गात्र ये प्रान्त हैं, आत्मा राजा अथवा शासक है, बुद्धि उसकी समिति है। इस तरह यह शरीरमें राज्य चल रहा है। इसमें परस्पर सहकार्य, परस्पर सेवा और परस्पर प्रेमका संबंध जैसा है वैसा संबंध राष्ट्रमें रहना चाहिये। सब मिलकर एक शरीर है वैसा ही यहांका राष्ट्र मिलकर एक ही शरीर है। शरीरमें छोटा राष्ट्र है और राष्ट्र बडा शरीर है। पर दोनों स्थानोंमें नियम एक ही हैं।

सब राष्ट्र एक शरीर है ऐसा मानकर राज्यशासन करना चाहिये। राजा और शासनाधिकारी प्रजाजनोंके साथ व्यवहार करनेके समय प्रजाजनोंके साथ एकरूप होकर, अभिन्न भावसे जहांतक हो सके वहांतक राज्यशासनका कार्य करते जांय। वैदिक शासनका यह मुख्य तन्त्र है।

प्रथम इसके पूर्व राष्ट्र एक ही शरीर है ऐसा कहा और वहां वही भाव अन्य शब्दोंद्वारा वर्णन किया है। (विशः मे अंगानि) सब प्रजाजन राजाका शरीर है तथा (विक्षि राजा प्रतिष्ठितः) प्रजाजनोंमें राजा सुप्रतिष्ठित होता है। इन दोनों कथनोंमें राजा और प्रजाकी एकरूपता ही वर्णन की है। राजा प्रजाजनोंसे पृथक् नहीं है, परंतु सब प्रजाजन मिलकर ही राजा होता है। 'सब प्रजा' यही राजाका वास्तविक स्वरूप है ऐसा राजाको मानना और इस दृष्टिसे राज्यशासन करना योग्य है।

जहां प्रजा और राजाका संबंध इस तरहका होगा वहां राजा प्रजाका संघर्ष होनेकी सभावना ही नहीं होगी। यह वैदिक राज्यशासनका प्रमुख मन्तव्य है इसलिये वैदिक राज्यशासनमें प्रजाको सुख अधिक प्राप्त होता है।

इस लेखके प्रारंभमें १३ प्रकारके भिन्न भिन्न राज्यशासनोंका उल्लेख किया है। इस समय 'साम्राज्य शासन' बुरा है और 'स्वराज्य शासन' उत्तम है ऐसा लोग मानते हैं। पर यदि इस वैदिक दृष्टिकोणका स्वीकार किया, और राष्ट्रकी सब प्रजा और राजा मिलकर एक ही शरीर है ऐसा मान किया और सब प्रजाजन ये राजाके शरीरके अवयव हैं (विशो मे अंगानि) यह भाव मनमें धारण किया और तदनुसार राज्यशासन किया, तो वह साम्राज्य शासन हो या स्वराज्य शासन हो या और तीसरा कोई शासन हो, तो भी उसमें कोई दोष होनेकी संभावना नहीं है। राज्यशासनमें दोष होनेका जो मुख्य कारण है वही इस विचार पद्धतिसे वैदिक ऋषियोंने अथवा वेदमंत्रोंने दूर किया है। इसीलिये वैदिक राज्यशासनमें दोषोंके उत्पन्न होनेकी संभावना कम है।

सब प्रजाजन मिलकर एक 'राष्ट्रपुरुष' है यह कल्पना व्यवहारमें आगयी और यह एकत्वकी भावनाका तत्व राजाके तथा प्रजाजनोंके मनमें ठीक तरहसे जम गया, तो 'हम सब मिलकर एक ही हैं' ऐसा वे मानेंगे और वैसा बर्ताव करेंगे, इस कारण विभिन्नताका भाव उनके व्यवहारमें नहीं रहेगा। इस कारण विभिन्नताका भाव रहनेके कारण जो दोष होनेकी संभावना है वे दोष नहीं होंगे। जहां पृथक् भाव है वहीं एक दूसरेको लूटता है, दूसरेका अपहरण करता है। जहां एक जीवनका भाव हुआ वहां दूसरा ही नहीं रहा, वहां कौन किसको लूटेगा और कौन किसके

साथ द्वेष करेगा ? यह उच्च अवस्था है और यही व्यवहारमें लानेका प्रयत्न ऋषिलोग करते थे। इसलिये उनको सच्चे सुखका अनुभव होता था।

(विशो मे अंगानि सर्वतः) प्रजाजन ही राजाके शरीरके अवयव हैं। यह वैदिक सिद्धान्त स्वीकारनेसे राजा और प्रजाकी एकता मनमें सुस्थिर हो जाती है और इससे साम्राज्यवादसे अन्यत्र जो अनर्थ होते हैं वे अनर्थ इस पद्धतिका साम्राज्य जहां होगा वहां नहीं होंगे यह तो निःसंदेह हम कह सकते हैं। प्रजाजनोंको दुःख हुआ तो वह दुःख राजाको ही हुआ ऐसा राजा और राज्यशासक समझेंगे। वहां राजा तथा राजपुरुषोंसे प्रजाको कष्ट देनेका कार्य कदापि नहीं होगा। इस विचारके वायुमंडलमें पला हुआ राजा तथा राजपुरुष, भले ही वे साम्राज्यके हों अथवा दूसरे किसी राज्यके हों प्रजाको कष्ट देनेवाले नहीं बनेंगे। प्रजाको कष्ट देनेका पाप अपने द्वारा न हो। इस विषयमें वे दक्ष रहेंगे, इसीलिये वैदिक समयके राजा प्रजाके शोषक होनेकी संभावना नहीं थी। कोई वैसे दुष्ट बने तो वह अपवाद होगा।

पाप न करनेकी दक्षता

(दिवा नक्तं) दिनमें अथवा रात्रीमें (जाग्रत् स्वप्ने) जागते हुए अथवा स्वप्नमें वा निद्रामें, (ग्रामे अरण्ये) गांवमें वा अरण्यमें, (सभायां) सभामें अथवा समितिमें (इन्द्रिये) इन्द्रियके संबंधमें, (शूद्रे अर्ये) शूद्र तथा आर्यके संबंधमें अपने द्वारा पाप न हो ऐसा राजा सोचता है। इतनी दक्षता वह मनमें धारण करता है। अपने आचरणमें पाप हुआ तो वह उसके लिये प्रायश्चित्त करनेको तैयार रहता है। ऐसे दक्ष राजामें पाप होनेकी संभावना ही नहीं है। जिसके विचार शुद्ध होते हैं उसकी आचार शुद्धता स्वयं हो जाती है। इस तरह विचार करके देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि आजकी राज्यशासन विषयक कल्पना और ऋषियोंकी राज्यशासनकी कल्पना इनमें बडा भारी अन्तर है। और भी देखिये—

ज्ञानी और शूरोंका सहकार्य

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥
वा० यजु २०

“ जहां ज्ञानी और शूर मिलजुलकर एक विचारसे राज्यशासन चलाते हैं, वही पुण्य देश है और वही रहनेके लिये योग्य देश है।”

रहनेके योग्य देश कौनसा है इसका निश्चय अपनी प्रज्ञासे करना हो तो यह देश, जो ऊपरके मंत्रमें कहा है, रहनेके लिये योग्य है, ऐसा समझना योग्य है।

जिस देशके ज्ञानी और शूर एक मतसे अपनी मातृभूमिकी सेवा करनेके लिये तैयार रहते हैं, आपसमें झगडते नहीं, सब प्रजाजनोंका मिलकर एक ही राष्ट्रपुरुष है ऐसा मानते हैं, तथा इसी राष्ट्रपुरुषकी सेवा सबने मिलकर करनी है ऐसा समझते हैं वही पुण्य देश है और वही रहनेके लिये योग्य देश है, ऐसा सब मानें।

अब हम राज्याभिषेकके मन्त्र देखते हैं। देखिये इन मन्त्रोंसे क्या बोध मिलता है—

राज्याभिषेकके मन्त्र

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत्॥
ऋग्वेद १०।१७३।१

ध्रुवोऽच्युतः प्रमृणीहि शत्रून्
शत्रूयतोऽधरान् पादयस्व।
सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः
ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह॥
अथर्व. ६।८८।३

‘ हे राष्ट्रके अध्यक्ष ! मैंने (त्वा आहार्षं) तुमको इस राजगद्दीके स्थानपर लाया है। अब (अन्तः एधि) अन्दर आओ, (ध्रुवः तिष्ठ) स्थिर रहो, (अविचाचलिः) चञ्चल न होओ। (सर्वाः विशः त्वा वाञ्छन्तु) सब दिशाओंमें रहनेवाले प्रजाजन इस राष्ट्राध्यक्षके स्थानपर तुम्हें ही रखनेकी इच्छा करें। (राष्ट्रं त्वत् मा अधिभ्रशत्) यह राष्ट्र तुमसे अधःपतित न हो। यह राष्ट्र तुमसे दूर वा पृथक् न बने।

तुझे राज्यसे पदच्युत होनेका अवसर प्राप्त न हो। (ध्रुवः अच्युतः शत्रून् प्रमृणीहि) राज्यगद्दीपर स्थिर रहकर, अर्थात् स्थानभ्रष्ट न होते हुए, तू शत्रुओंका पूर्ण नाश कर। (शत्रूयतः अधरान् पादयस्व) शत्रुके समान आचरण करनेवाले जो जो होंगे उन सबको नीचे

मिला दे। (सर्वाः दिशः संमनसः सध्रीचीः) सब दिशाओंमें रहनेवाले प्रजाजन एक मतसे साथ होकर तुझे ही राज्यपर रखनेके लिये अनुमति दें। (इह ते ध्रुवाय) यहां तेरे स्थैर्यके लिये (समितिः कल्पतां) राष्ट्रसमिति समर्थ होवे अर्थात् वह राष्ट्रसमिति तुझे ही राजगद्दीपर रखनेके लिये अनुमति देवे। इस तरहका उत्तम प्रजाहित-कारी राज्यशासन तू कर। इसमें प्रमाद होने न दे। यदि वह राष्ट्रसमिति तेरे लिये अनुकूल रहेगी और तुझे ही राष्ट्र-पर रखनेकी इच्छा करेगी तो ही तेरी स्थिति इस राज्यपद-पर रहेगी, नहीं तो तेरे स्थानभ्रष्ट होनेमें कोई देरी नहीं लगेगी।

ये मंत्र राज्याभिषेकके समारंभमें बोलनेके लिये हैं। इन मंत्रोंमें राज्यका पुरोहित राजाको क्या कहता है वह सब मननीय है। (सर्वाः विशः त्वा वांछन्तु) सब प्रजाजन तुझे ही इस अध्यक्ष स्थानमें रखनेकी इच्छा करें, अर्थात् यदि प्रजाजन प्रतिकूल रहे तो कोई राजा राजगद्दी-पर नहीं रह सकता अर्थात् प्रजा ही उसको स्थानभ्रष्ट कर देगी। इसी तरह (सर्वाः दिशः संमनसः सध्रीचीः) सब दिशाओंमें रहनेवाले प्रजाजन एक मतसे तुझे ही इस राष्ट्राध्यक्षपदपर रखनेकी इच्छा करें। अर्थात् प्रजाकी अनुकूल संमतिसे ही राजा अध्यक्ष स्थानपर रह सकता है। जन्मके अधिकारसे नहीं। जन्मजात राजाको शासनाधिकार नहीं है, वह प्रजाकी अनुमतिसे प्राप्त हुआ अधिकार है यह बात यहां मनमें रखनेयोग्य है।

राजा चंचल न हो। राज्यशासनका कार्य चंचलता, अस्थिरता छोडकर राजाको करना चाहिये। अपनी राज्य-पद्धतिसे राष्ट्रका अधःपात नहीं होना चाहिये। राजा इस विषयमें सदा दक्ष रहे। राष्ट्रके शत्रु दूर रहें ऐसा संरक्षणका सुप्रबंध करना चाहिये। यह सब राजाका कर्तव्य है यह उपदेश राज्यारोहणके इस मंगलप्रसंगमें जनताके नेता अर्थात् पुरोहित राजाको करते हैं। राज्यसे राजा पदच्युत भी हो सकता है यह भय भी इसी मंगल प्रसंगमें राजाके सामने रखा जाता है। यह सब शतपथ ब्राह्मणने ऐसे ही भिन्न शब्दों द्वारा कहा है देखिये—

ता अस्मा इष्टाः प्रीता एतं सुवं अनुमन्यन्ते।
ताभिरनुमतः सूयते। यस्मै वै राजानः राज्यं
अनुमन्यन्ते स राजा भवति। न स यस्मै न॥
श. ब्रा ५।३।३।५

" वे सब प्रजाजन इसके विषयमें सन्तुष्ट होते हैं, इस कारण इसको अपनी अनुमति देते हैं। उनकी अनुमतिसे यह बनाया जाता है। जिसको वे अनुमति देते हैं और राज्यके लिये वह योग्य है ऐसा कहते हैं वह राजा होता है। पर वह राजा नहीं होता कि जिसको प्रजाकी अनुमति नहीं मिलती।" इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रजाकी अनुकूल संमतिसे राजा राजगद्दीपर जाता है। अर्थात् प्रजाकी अनु-मति रहनेतक ही वह राजपदपर रह सकता है।

इस तरह वैदिक समयमें प्रजाकी अनुमतिपर राजाका अस्तित्व अवलंबित रहता था। इसलिये राजा अपने राष्ट्रमें एक " राष्ट्र समिति " स्थापन करे जिसमें प्रजाके प्रति-निधि आवें और राज्यशासनके विषयमें अपनी संमति देवें।

" ते ध्रुवाय समितिः कल्पतां " राजाकी स्थिरताके लिये यह राष्ट्रसमिति समर्थ होवे। इस समितिकी अनु-मतिसे राजा राज्यशासन करे। इससे यह समिति राजाके अनुकूल रहेगी। यदि इस राष्ट्रसमितिकी मान्यता राजाके लिये प्राप्त हुई तो वह राजा उस राज्यकी गद्दीपर बहुत देरतक रहेगा। अब हम इस राष्ट्रसमितिके अधिकार कैसे थे इस विषयमें प्रजापतिकी दुहिताकी कथा देखते हैं—

प्रजापतिका वध

' प्रजापति ' का अर्थ प्रजाका पालन करनेवाला राष्ट्रका अध्यक्ष। इसका वध ऋषियोंने किया था ऐसा वर्णन वैदिक वाङ्मयमें है वह वृत्तान्त संक्षेपसे अब देखिये—

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्। दिव-
मित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये। तां ऋश्यो भूत्वा
रोहितं भूतामभ्यैत्, तं देवा अपश्यन्। न कृतं
वै प्रजापतिः करोति। ते तमैच्छन्। य एनमा-
रिष्यति, एतमन्योन्यस्मिन्नाविदन्। तेषां या
घोरतमास्तन्व आसन्, ता एकधा समभरन्,
ताः संभृता एष देवोऽभवत्। तदस्मै तद्भूत-
वन्नाम···। तं देवा अब्रुवन्, अयं वै प्रजापति-
रकृतमकः, इमं विध्येति, स तथेत्यब्रवीत्०॥
ऐ० ब्रा० ३।३३

यह वृत्तान्त शतपथ ब्राह्मणमें आया है। वह भी ऐसा ही है पर उसमें थोडा फरक है इसलिये वह यहां देते हैं—

प्रजापतिर्वै स्वांदुहितरमभिदध्यौ। दिवं वोषसं
वा। मिथुन्येनया स्यामिति। तां संबभूव॥१॥

तद्वै देवानामाग आस । य इत्थं स्वां दुहितर-मस्मत्स्वसारं करोति ॥ १ ॥ ते ह देवा ऊचुः । योऽयं देवः अतिसंघं चा अयं चरति, य इत्थं स्वां दुहितरमस्मत्स्वसारं करोति । विध्येममिति । तं रुद्रोऽभ्यायत्य वि व्याध ॥ ३ ॥ तेषां यदा देवानां क्रोधो व्यैदथ प्रजापतिमभिषज्यंस्तस्य तं शल्यं निरकृन्तन् । स वै यज्ञ एव प्रजापतिः॥

श० ब्रा० १।७।४

इस कथाका तात्पर्य ऐसा है–

१ प्रजापतिकी एक पुत्री थी,

२ वह प्रौढ होनेपर उसके सौंदर्यको देखकर प्रजापति मोहित हुआ और उस पुत्रीके पीछे पीछे दौडने लगा। उसपर बलात्कार करके उससे संभोग करनेकी इच्छा उसमें उत्पन्न हुई।

३ सब देवोंकी संमतिसे प्रजापतिका यह पाप कर्म है ऐसा निश्चित हुआ। इसलिये प्रजापतिका वध करना योग्य है ऐसा उन्होंने निश्चित किया। यह कार्य करनेके लिये अपनेमें कौन है इसका उन्होंने विचार किया।

४ परन्तु उनको अपनेमेंसे कोई ऐसा बलवान नहीं मिला कि जो प्रजापतिका वध कर सकनेमें समर्थ हो।

५ पश्चात् उन्होंने अपनेमें जो शक्तिमान थे उनको इकट्ठा किया और उनका एक संघ उन्होंने बनाया।

६ उस संघको देवोंने कहा कि यह प्रजापति जो नहीं करना चाहिये वही करने लगा है। इस कारण इसका वध कर। यह देवोंकी आज्ञा होते ही उसने प्रजापतिपर बाण मारा और उसका वध किया।

यह इस तरह प्रजापतिके वधकी कथा है। प्रजापतिकी पुत्री द्यु है वा उषा है इस विषयमें ब्राह्मण ग्रन्थकारोंमें मतभेद है। ब्राह्मण ग्रन्थ लेखकोंको भी वेदमंत्रमें वर्णित प्रजापति और उसकी पुत्रीके विषयमें निश्चित कल्पना नहीं है। वे यह उषा है या द्यु है ऐसा कहते हैं। इससे मंत्र-काल और ब्राह्मणकालमें बहुत अन्तर है यह बात सिद्ध होती है। मंत्रमें जो वर्णन है वह किसका वर्णन है इस विषयमें ब्राह्मणकारोंको विस्मरण हुआ था। इसमें संदेह नहीं है। हम अब इसीका संशोधन करते हैं और देखते हैं कि वेदमन्त्रोंके आधारसे हमें प्रजापतिकी पुत्रीके विषयमें कुछ निश्चित कल्पना प्राप्त होती है या नहीं।

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने। येना संगच्छा उप मा स शिक्षात् चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥ अथर्व. ७।१२

'सभा और समिति ये दोनों प्रजापतिकी पुत्रियां हैं। ये दोनों (सं विदाने) सत्य ज्ञान राजाको देती हैं। जिस सभासदको मैं मिलूंगा वह मुझे सत्य ज्ञान देवे। हे (पितरः) रक्षक सदस्यो! सभाओंमें मैं अच्छा ही भाषण करूंगा।'

इस मन्त्रने प्रजापतिकी पुत्रियां 'ग्रामसभा और राष्ट्र-समिति' ये हैं ऐसा स्पष्ट कहा है। इसमें संदेह हो ऐसी कोई बात यहां नहीं है। 'प्रजापतेः दुहितरौ' ये दोनों पद बिलकुल स्पष्ट हैं। ग्रामसभा और राष्ट्रीय समिति ये दोनों सभाएं राजाकी आज्ञासे बनती हैं इसलिये ये राजाकी पुत्रीयां हैं।

दूर रहनेसे हितकारक

'दुहिता' का अर्थ 'दूर रहनेसे हितकारक' ऐसा है। ग्रामसभा और राष्ट्रसमिति ये राजाकी आज्ञासे निर्माण होती हैं इसलिये पुत्रियां हैं। पर ये 'दुहिता' हैं। (दुहिता दूरे हिता) दुहिता वह है कि जो दूर रहनेसे ही हितकारक होती है 'दुहिता।' के दो अर्थ हैं—

१ पुत्री और

२ दूर रहनेसे हितकारक

पुत्री पिताके वीर्यसे उत्पन्न होती है, पर वह स्त्रीवत् उपभोग्य नहीं है वह दूर रखनेसे हितकारक है। पुत्री दूरके वंशमें दी जाती है। पत्नी पास रहनेसे हितकर है, और पुत्री दूर रहनेसे हितकर है।

ग्रामसभा और राष्ट्रसमिति राजाकी पुत्रियां हैं, पर उनपर बलात्कार करना राजाके लिये योग्य नहीं। उन सभासमितियोंको अपना मतप्रदर्शनका पूर्ण स्वातंत्र्य होना चाहिये। यदि कोई राजा अपनी शक्तिका उपयोग करके सभा और समितिसे अपनी इच्छाके अनुसार कार्य करावे, तो वह शिष्टसंमत नहीं होगा। वे शिष्ट लोग यही कहेंगे कि 'अकृतं अकः' इसने जो नहीं करना चाहिये वही किया है। इस कारण ऐसे राजाकी निंदा ही सब सज्जन करेंगे।

प्रजापति संस्था

'प्रजापति संस्था' नामक एक राज्यशासन पद्धति वैदिक समयमें थी। 'ग्रामसभा' ग्रामका और 'राष्ट्रीय समिति' राष्ट्रका शासन करती थी। इस तरहके राज्य-शासनकी व्यवस्था इस प्रजापति संस्थामें होती थी।

किसी राजाने अपने अधिकारका दबाव ग्रामसभापर अथवा राष्ट्रसमितिपर लाया और अपनी इच्छानुसार उनसे कार्य कराया। यह बात ऊपरके ब्राह्मणवचनमें बतायी है। इस रीतिसे राजाने इन सभाओंपर बलात्कार किया। उस समय के जननेताओंको वह प्रजापतिका करना पसंद नहीं आया। उस समयके नेताओंने अपनेमेंसे जो वीर लोग थे उनको संघटित किया और प्रजापतिका वध करवाया। बाण मारकर इस समयके राष्ट्राध्यक्षको घायल किया। यह कथा इतनी ही ब्राह्मण ग्रन्थोंमें है। पर यह कथा यहाँ समाप्त नहीं हो सकती। प्रजापतिका वध करके लोकनेताओंने आगे क्या किया यह ब्राह्मणग्रन्थमें नहीं है, पर यह कथा वेदमंत्रमें है। वह वेदमंत्र अब देखिये। उस समयके राष्ट्रके नेता लोग नये राष्ट्रशासकको राजगद्दीपर बिठलाते हैं। यह मन्त्र अब देखिये—

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्
क्ष्मया रेतः संजग्मानो निषिंचत्।
स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवाः
वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥ ऋ० १०।६१।७

(पिता) प्रजापतिने जब (स्वां दुहितर) अपनी ग्रामसभा तथा राष्ट्रसमिति इन दो पुत्रीयोंपर बलात्कार किया, अर्थात् अपने अधिकारका दबाव इन लोकसभाओंपर लाया, तब (क्ष्मया संजग्मान.) पृथ्वीके ऊपरकी, राष्ट्रकी जनताके साथ जो उसका संघर्ष हुआ उस संघर्षमें उसका (रेतः निषिंचन्) वीर्य गिर गया, उसका सब बल नष्ट हुआ। इसके पश्चात् (स्वाध्यः) स्वाध्यायशील लोगोंने, ज्ञानीजनोंने (ब्रह्म जनयन्) नया विचार प्रकट किया, नयी घोषणा की और (व्रतपां) नियम पालन करनेवाले नये (वास्तोष्पतिं) राजाको शासकको (निरतक्षन्) निर्माण किया, चुनाया और उसको राजगद्दीपर बिठलाया।

इस मन्त्रके अन्तिम चरणमें जो लिखा है वह ब्राह्मणग्रन्थोंमें नहीं है। (व्रत-पां वास्तोष्पतिं निरतक्षन्) नियम पालन करनेवाले अध्यक्षको बनाया, चुनकर पसंद किया और उसको राजगद्दीपर बिठलाया। इस नये अध्यक्षका विशेष गुण यह है कि वह (व्रत-पा) नियमोंका पालन करनेवाला है। जो मारा गया वह व्रतका भंग करनेवाला था। इसलिये उसको मारा और नियमोंके अनुसार राज्यशासन करनेवालेको सर्व संमतिसे राजगद्दीपर बिठलाया। दूसरा भी एक वृत्त ऐसा ही है—

वेन राजाका वध

स्वेच्छाचारी वेन राजाका वध भी इसी तरह उस समयके ऋषियोंने किया था, तथा उसका ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज पापक तथा क्रूर होनेके कारण उसको वनवासका दण्ड दिया और उस वेनके द्वितीय पुत्र पृथुको राज्यपर बिठलाया। यह इतिहास अनेक पुराणोंमें है। इसलिये यह अत्यंत प्रसिद्ध है। प्रजापतिके वधकी कथा प्राचीन है और उसकी अपेक्षा वेनका इतिहास अर्वाचीन है।

प्रजापतिके वधका इतिहास अतिप्राचीन है और यह राजकीय स्वरूपका इतिहास है। दुष्ट राजाका वध किया और उसके स्थानपर दूसरे नियमानुसार राज्य करनेवालेको बिठला दिया। पहिला विधिनियमोंको मानता नहीं था इस कारण उसको हटाया। दूसरेने नियम पालनकी प्रतिज्ञा की, वह सब जनताको विश्वसनीय प्रतीत हुई। इसलिये उसको चुना और राजगद्दीपर बिठला दिया।

यदि ब्राह्मणग्रन्थोंमें लिखा अर्थ लिया जाय तो सूर्य, उषा अथवा द्युलोक इनके साथ सूर्यसे व्यभिचार होनेकी संभावना ही नहीं है और प्रजापतिका वध ही नहीं हुआ, और दूसरा प्रजापति भी नहीं लाया। इस तरह अर्थ स्वीकार करनेपर कोई कथा ही स्थानपर नहीं रहती। सूर्य प्रजापति है उसने उषापर जो नहीं करना चाहिये वैसा कुछ भी कार्य किया ही नहीं। फिर उसको बाण किसने क्यों मारा? इस तरह ब्राह्मणग्रंथोंका अर्थ लेनेसे "नियम पालक दूसरा प्रजापति राज्यपर लाया गया" इसकी संगति नहीं लगती।

ग्रामसभा और राष्ट्रसमिति यह अर्थ लेनेपर सब राज्यशासन व्यवस्थाका ज्ञान ठीक तरहसे होता है और कथाका राज्यशासन विषयक भाव भी स्पष्टरीतिसे समझमें आ जाता है।

यूरोपमें इंग्लंड, फ्रान्स, रशिया आदि देशोंके राजाओंका वध भी इसी तरह वहांकी जनताके नेताओंने किया था। यह इतिहास उन देशोंके इतिहासोंमें सुप्रसिद्ध है। वेन राजाका वध उसी तरह हुआ था और प्रजापतिकी कथा

तो उससे भी प्राचीन है। ब्राह्मण ग्रंथकारोंने इस प्रजापतिकी कथाको रूपक ठहरानेका यत्न किया है और पुराणकार भी उसी पंथमें हैं। देखिये श्रीमद्भागवतकार इसी कथाका रूप कैसा लिखते हैं–

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः।
अकामा चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२८॥
तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः।
मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात् प्रत्यबोधयन् ॥२९॥
नैतत् पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे।
यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्यांगजं प्रभुः ॥ ३० ॥
स इत्थं गृणतः पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन्।
प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ॥ ३१ ॥

श्रीमद्भागवत० ३।१२

इस भागवतकी कथामें द्यु और उषा ये अर्थ लिये नहीं हैं, परन्तु ' वाणी ' अर्थ लिया है। तथा प्रजापतिने स्वयं लज्जित होकर आत्महत्या की ऐसा लिखा है। पर वाणी अर्थ लेनेपर प्रजापति लज्जित क्यों हुआ और उसने आत्महत्या क्यों की यह एक गूढ ही रहता है। अर्थात् श्रीमद्भागवतका अर्थ लेनेपर भी अर्थ ठीक लगता नहीं। परन्तु ग्रामसभा और राष्ट्रीयसमिति यह अर्थ लेनेपर ही इस कथाका सच्चा और राष्ट्रीय भाव प्रकट होता है।

यहांतक जो विवेचन किया उससे निम्नलिखित बातें सिद्ध होगयी है–

१ ऋषियोंने कमसे कम १३ प्रकारके राज्यशासन तंत्र नाना देशोंमें, नाना समाजोंमें और अनेक समयोंमें आजमाये थे और उन तन्त्रोंके विषयमें अनुभवसे वे बोल सकते थे।

२ ये अनेक प्रकारके शासनतन्त्र निर्माण करनेके लिये उनको अनेक हलचलें करनी पडी थी और कई प्रसंगोंमें उनको कारावास जैसे अनेक दुःख भी भोगने पडे थे।

३ ऋषिलोगोंने जो अनेक शासन संस्थाएं निर्माण की थी और उनका अनुभव लिया था, उन सबमें उनकी संमतिसे " व्यचिष्ठ बहुपाय्य स्वराज्य " यही शासन संस्था जनताका हित करनेके लिये अत्यंत उपयुक्त था ऐसा सिद्ध हुआ था।

४ समुद्रतक जितनी पृथिवी है उस पृथिवीपर नाना प्रकारके छोटे मोटे पृथक् पृथक् राज्य न रहें, परंतु सबका मिलकर एक ही संयुक्त राज्यशासन हुआ तो वह सब प्रजाजनोंको अधिक सुख देनेवाला बनेगा ऐसा उनका निश्चय हो चुका था। पर यह उनके समयमें बना नहीं।

५ सब पृथिवीपर जितने मानव हैं वे सब मिलकर 'एक ही देह है,' ऐसा मानकर सबके शासनादि व्यवहार इस अनन्यभावसे होने लगे, तो ही सबका अधिक हित होगा यह उन ऋषियोंका निश्चित सिद्धान्त था।

६ जो ज्ञानी होंगे वे अपने ज्ञानसे, जो शूर होंगे वे अपने शौर्यसे, जो कृषि करते हैं वे अपनी कृषिसे, जो व्यापार करते हैं वे व्यापारसे और अन्योंने अपने शिल्पादि कर्मोंसे, इस तरह सबने अपने अपने कर्मसे इस विश्वपुरुषकी अथवा इस मानवसमाजरूपी पुरुषकी सेवा करनी चाहिये यह ऋषियोंद्वारा प्रतिपादित धर्म था।

७ एक शरीरमें जिस तरह सब व्यवहार उत्तम तथा पूर्ण सहकार्यसे होते रहते है, प्रत्येक अवयव जिस तरह सब शरीरका हित साधन करनेके लिये यत्न करता है, मस्तक बाहु पेट और पांव सब शरीरके हितके लिये यत्न करते रहते हैं, इसी तरह राष्ट्रमें सब जातियों और वर्णोंका सहकार्य होना चाहिये और सबने राष्ट्रका तथा मानवसंघका हित करनेके लिये अपने प्रयत्नकी पराकाष्ठा करनी चाहिये। इस अनन्य व्यवहारसे ही सबका अधिकसे अधिक कल्याण हो सकता है।

८ सब प्रजाजन ही राजाका वास्तविक सच्चा शरीर है। राजा प्रजाकी अनुमतिके आधारपर राज्यपदपर चढा है ऐसा राजा और राजपुरुष माने और अपनी सब शक्ति प्रजाका हित करनेके लिये जो जो आवश्यक कार्य करने होंगे, उनके करनेमें लगावे, ऋषियोंकी यह शिक्षा थी।

९ राज्याभिषेकके मंगल प्रसंगमें ऋषि राजाको साफ शब्दोंसे कहते थे कि प्रजाकी अनुकूल संमति रहनेतक ही राजा राजगद्दीपर रह सकता है। इसलिये प्रजाकी अनुकूल संमति प्राप्त करनेके लिये राजाको उचित है कि वह प्रजाका सच्चा हित होता रहे ऐसा ही सतत कार्य करना चाहिये। राजा एक राष्ट्रसमिति स्थापन करे और उसकी संमतिसे अपना राज्यशासन चलावे।

१० प्रजापति संस्था यह एक अति प्राचीन कालकी राज्यशासन संस्था थी। इस प्रजापति संस्थाके राज्यशासनमें ग्राममें ग्रामसभा द्वारा ग्रामका राज्यशासन किया जाता था और राष्ट्रसमिति द्वारा राष्ट्रका राज्यशासन होता था। इन सभाओंके कुछ निश्चित अधिकार थे। इन सभाओंका सम्मान राजा तथा राजपुरुष करते थे। यदि कोई राष्ट्राध्यक्ष इन सभाओंका अपमान करता था, अथवा सभाओंकी संमति मानता नहीं था, तो उस समय जनताके नेता लोग उसको दण्ड देते थे अथवा उसे पदच्युत भी घोर अन्याय होनेपर करते थे और दूसरा अध्यक्ष चुनते थे।

इस तरह ऋषिकालके राज्यशासनके व्यवहार थे। इस समय ये ऋषि अखिल भूमंडलपर एक राज्यशासन हो ऐसा विचार कर रहे थे। इस भूमिकातक ऋषियोंका राज्यशासनका अनुभव पहुंच चुका था।

हम आज 'यू-नो' उत्पन्न कर वही कार्य करनेकी इच्छा कर रहे हैं। इसको देखनेसे हम यह निःसन्देह कह सकते हैं कि ऋषिलोग आजके नेताओंके बहुत पीछे तो निःसंदेह नहीं थे।

विषयसूची

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।१९।१२)

जनं वज्रिन् महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥ ६०९ ॥

हे (वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (येषु अस्मि) जिनमें मैं एक हूँ ऐसे (एभ्यः नृभ्यः) इन मानवोंके लिए (महि चित् मन्यमानं जनं) अपनेको महत्त्वपूर्ण समझनेवाले शत्रुके पुरुषको (रन्धय) वशीभूत कर दो, (अध) पश्चात् (पृथिव्यां शूरसातौ) भूमिपर लडाई होनेपर (तनये गोषु अप्सु) पुत्रके लिए, गौओं तथा जलोंकी आवश्यकता होनेपर (त्वा हि हवामहे) तुझे ही बुलाते हैं।

गोषु त्वा हवामहे= गाइयोंकी प्राप्तिके लिये लडाई छिड जानेपर वीरोंको ही बुलाते हैं।

[२१५] गौकी झुण्डको चलानेवाला।

वामदेवो गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।२०।८)

ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम्।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥ ६१० ॥

(रायः) धनका, (क्षयस्य) गृहका (उत चर्षणीनां) और प्रजाओंका (ईक्षे) तू निरीक्षण करता है, (गोनां व्रज) गायोंके झुंडको (अपवर्ता असि) तू शत्रुओंसे दूर हटाता है; (शिक्षानरः) तू प्रजाको शिक्षा देकर नेता बननेवाला (समिथेषु प्रहावान्) युद्धोंमें प्रहरण साथ ले जानेवाला है, (वस्वः) धनकी (भूरिं राशिं) प्रचण्ड राशिको (अभिनेता असि) तू जनताके सम्मुख लानेवाला है।

गोनां व्रजं अपवर्ता= गौओंके व्रजको दूर हटानेवाला शत्रुसे गौएं वापस लानेवाला है।

[२१६] गायोंको हांकनेका दण्ड।

वसिष्ठो मैत्रावरुणि। वसिष्ठ पुत्रा, इन्द्रो वा त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।३३।६)

दण्डा इवेद्गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६११ ॥

(अर्भकासः भरता) छोटे छोटे भरतवंशीय लोग (गो-अजनासः दंडाः इव) गायोंको हाँकनेमें उपयुक्त डंडोंके समान (परिच्छिन्नाः आसन्) छिन्न विच्छिन्न हो गये, तब उनका (वसिष्ठः पुर एता अभवत् च) वसिष्ठ अग्रगन्ता हुए, (आत् इत्) पश्चात् ही (तृत्सूनां विशः अप्रथन्त) तृत्सु नरेशोंकी प्रजा विस्तारयुक्त हो गयी।

[२१७] गायको रस्सीसे बांधना।

ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराश्च। इन्द्राग्नी, आयुष्यं, यक्ष्मनाशनम्। त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती। (अथर्व० ३।११।८)

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुंचद् बृहस्पतिः ॥ ६१२ ॥

(उक्षणं गां रज्ज्वा इव) जैसे बैल या गायको रस्सीसे बाँध देते हैं, वैसे ही (जरिमा त्वा

अभि आहित) बुढापेने तुझे बाँध दिया है; (यः मृत्युः) जो मौत (जायमानं त्वा सुपाशया अबध्नत्त) उत्पन्न होते हुए ही तुझे अच्छे फन्देसे बाँध चुकी है, (ते तं) तेरी उस मौतको (सत्यस्य हस्ताभ्यां बृहस्पतिः उदमुञ्चत्) सत्यके दोनों हाथोंसे बृहस्पति छुडा देता है।

[२१८] नाना रंग रूपवाली गौवें।

शबरः काक्षीवतः। गावः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१६९।२)

या: सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ ६१३ ॥

(याः) जो गौएँ (स-रूपाः) समान रूपवाली (वि-रूपाः) विभिन्न स्वरूपसे युक्त और (एक-रूपा) एक ही रूप धारण करनेवाली हैं, (यासां नामानि) जिनके नामोंको अग्नि (इष्ट्या वेद) यज्ञोंके कारण जानता है, तथा (याः) जिन्होंने (इह तपसा) इधर प्रकाशसे युक्त (अंगिरसः चक्रुः) अंगिराओंको बना दिया, (ताभ्यः) उन्हें हे पर्जन्य! (महि शर्म यच्छ) बडा भारी सुख देदो।

याः सरूपाः विरूपाः एकरूपाः, यासां नामानि वेद= गौवें सरूप, विरूप, एकरूप, ऐसी नाना रूपों और रंगोंवाली हैं, इनके नाना प्रकारके नाम होते हैं।

[२१९] गायको बुलाना।

देवमुनिरैरम्मदः। अरण्यानी। अनुष्टुप्। (ऋ० १०।१४६।४)

गामङ्गैष आह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत्।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥ ६१४ ॥

(अङ्ग) अजी! (एषः गां आह्वयति) यह गायको बुलाता है, (एषः दारु अप अवधीत्) यह दूसरा लकडी काटकर दूर फेंक चुका है, और तीसरा (अरण्यानां वसन्) जंगलमें रहता हुआ (सायं) शाम होनेपर (अक्रुक्षत् इति मन्यते) कोई चिल्लाया ऐसा मानता है।

सायंकालके समयकी यह स्थिति है। एक अपने गायोंको अपने पास (गां आह्वयति) बुलाता है, दूसरेने लकडियां तोडकर अपना दिनभरका कार्य समाप्त किया है, तीसरा अपनेको कोई बुला रहा है ऐसा मानकर उसके आवाजको सुनना चाहता है।

[२२०] घीका काजल स्त्रियां आंखमें डालती है।

संकुसुको यामायनः। पितृमेधः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१८।७)

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥ ६१५ ॥

(इमाः सुपत्नीः) ये अच्छी पत्नियाँ (अविधवाः) वैधव्य दोषसे रहित होकर (सर्पिषा आंजनेन) घृतके काजलका अञ्जन लगाकर (सं विशन्तु) इकठ्ठी हो प्रवेश करें, (जनयः) पुत्रोंको जन्म देनेवाली ये नारियाँ (अन्-अश्रवः) आंसुओंसे रहित हो अर्थात् आनन्द प्रसन्न और (अन्-अमीवाः) निरोगी होकर (सुरत्नाः) अच्छे रत्नोंसे युक्त (योनिं अग्रे आरोहन्तु) यज्ञमें पहले बैठ जायँ।

सर्पिषा आञ्जनेन सं विशन्तु= घीके कज्जलसे बनाया अञ्जन लगाकर स्त्रियां उत्सव स्थानपर आ जांय।

यहां ' सर्पिषा आञ्जनेन ' का अर्थ ठीक तरह समझ लेना चाहिये । (१) घृतयुक्त अञ्जनसे, (२) घृत-जन्य अञ्जनसे, अथवा (३) घृतसे और अञ्जनसे ऐसे इसके अर्थ होते हैं ।

तिलोंके तेलका कज्जल मक्खनमें अथवा एरंडीके तेलमें मिलाकर आंखमें डालनेकी प्रथा आजकल इस देशमें है। कर्पूरकी ज्योतीका कज्जल बालकोंके आंखोंमें डालते हैं। मूर्तीकी पूजा करनेवाले घीके दीपसे मिलनेवाला कज्जल मूर्तिकी आंखोंमें डालनेके लिये बर्तते हैं। दीप तिलोंके तेलका, घीका, कर्पूरका हो, उसपर कुछ बर्तन रखनेसे कज्जल मिलता है। वह मक्खनमें, एरंडीके तेलमें मिलाकर आंखोंमें डालते हैं। अञ्जनके विषयमें वैद्यग्रन्थोंमें बहुत लिखा है। इस मन्त्रमें वैदिक प्रथाका वर्णन है।

[२२१] गायका दूध दुष्ट न पीये।

चातनः। अग्निः। भुरिक्। (ऋ० १०।८७।१७; अथर्व० ८।३।१७)

संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यंचमर्चिषा विध्य मर्मणि ॥ ६१६ ॥

हे (नृ-चक्षः) मानवोंके निरीक्षक ! (उस्रियायाः संवत्सरीणं पयः) गायका सालभरका मिलनेवाला जो दूध है, (तस्य यातुधानः मा आशीत्) उसका पान यातना देनेवाला दुष्ट न करे ! हे अग्ने ! (यतमः पीयूषं तितृप्सात्) उनमेंसे जो दुष्ट दूधरूपी अमृतको पीयेगा, (तं प्रत्यञ्चं अर्चिषा मर्मणि विध्य) उसे सबके सामने अपने तेजसे मर्मस्थलमें वेध डाल।

१ उस्रियायाः पयः यातुधानः मा आशीत्= गायका दूध दुष्ट मनुष्य न पीवे।

२ यतमः पीयूषं तितृप्सात्, तं मर्मणि विध्य= उन दुष्टोंमेंसे जो दूध पीवेगा, उसे मर्मस्थलमें वेध डाल।

पायुर्भारद्वाजः। रक्षोहाग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।८७।१६)

यः पौरुषेयेण क्रविषा समंक्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥ ६१७ ॥

हे अग्ने ! (यः यातुधानः) जो राक्षस (पौरुषेयेण क्रविषा) मानवी मांससे तथा (अश्व्येन पशुना सं अक्ते) घोडेके मांससे युक्त होता है, और (यः अघ्न्यायाः क्षीरं भरति) जो अवध्य गायके दूधको छीन लेता है, (तेषां शीर्षाणि) उनके सरको (हरसा अपिवृश्च) अपने तेजसे काट डालो।

यः यातुधानः अघ्न्यायाः क्षीरं हरति, तेषां शीर्षाणि अपिवृश्च= जो दुष्ट गौके दूधका अपहरण करते हैं, उनके सिरोंको काट डालो।

पायुर्भारद्वाजः। रक्षोहाग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।८७।१८)

विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः।
परैनान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥ ६१८ ॥

(यातुधानाः गवां विषं पिबन्तु) राक्षस गायोंका विष पी जायँ और (अदितये) अदीनताके लिए (दुरेवाः आ वृश्च्यन्तां) दुःखदायक लोग तेरे लिए हुए हथियारसे टुकडे टुकडे हो गिर पडें; (देवः सविता) दानी तथा उत्पादक परमात्मा (एनान् परा ददातु) इन्हें दूर फेंक दे, और (ओषधीनां भागं) ओषधियोंके हिस्सेके पानेसे वे (पराजयन्तां) वंचित रहे।

❀

[२२२] सफेद सौ बैल।

कुशः काण्वः । इन्द्रः, प्रस्कण्वश्च । गायत्री (ऋ० ८।५५।२)

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते । मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥ ६१९ ॥

(श्वेतासः शतं उक्षणः) सफेद रंगवाले सौ बैल (तारः दिवि न रोचन्ते) तारकागण द्युलोकमें जिस तरह जगमगाते हैं, उसी प्रकार शोभायमान होते हैं, और (मह्ना) महनीय तेजसे (दिवं न) द्युलोक सदृश उत्कृष्ट विभागको (तस्तभुः) स्थिर कर चुके हैं।

[२२३] अमृत जैसा दूध देनेवाली गाय।

अथर्वा । कश्यपः, सर्वे ऋषयः, छन्दांसि च; विराट्। त्रिष्टुप्। (अथर्व. ८।९।२४)

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वशं पीयूषं प्रथमं दुहाना ।

अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान् मनुष्याँ३असुरानुत ऋषीन् ॥ ६२० ॥

(केवलीः गृष्टिः) सिर्फ गाय ही (पीयूषं प्रथमं दुहाना) अमृतरूपी दूध सबसे प्रथम देनेवाली (इन्द्राय वशं दुदुहे) इन्द्रके लिए अनुकूलताके साथ दुहती है, (अथ चतुरः) और चारों देव, मानव, असुर एवं ऋषियोंको (चतुर्धा अतर्पयत्) चार प्रकारसे तृप्त करती है।

केवली गृष्टिः पीयूषं दुहाना वशं दुदुहे, चतुरः अतर्पयत् = केवल अकेली गाय ही अमृत जैसा दूध यथेष्ट देती है, और चारों प्रकारके लोगोंको तृप्त कर देती है।

ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ९।४।४)

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां अथो पिता महतां गर्गराणाम् ।

वत्सो जरायु प्रतिधुक्पीयूष आमिक्षा घृतं तद्वस्य रेतः ॥ ६२१ ॥

(वत्सानां पिता) बछडोंका पिता (अघ्न्यानां पतिः) गौओंका पति और (महताना गर्गराणां पिता) बडे प्रवाहोंका पालक, (वत्सः जरायु) बछडा जन्मते ही (प्रति धुक् पीयूषः) प्रतिदिन अमृतका दोहन करता हुआ, (आमिक्षा घृतं) दही और घी देता है (तत् उ अस्य रेतः) वही सचमुच इसका वीर्य है।

अघ्न्यानां पतिः, पीयूषः प्रतिधुक्, आमीक्षा घृतं, तद् अस्य रेतः = अवध्य गौओंका पति सांड है, प्रतिदोहनमें (उसके वीर्यसे उत्पन्न हुई गौमें) अमृत जैसा दूध ही दोहन करके देता है, दही और घी भी वही देता है, यही इसके रेतका महत्त्व है।

सांडके वीर्यसे उत्पन्न होनेवाली गौमें दूध दही और घीकी मात्रा न्यूनाधिक रहती है। अर्थात् इनकी मात्रा न्यूनाधिक होना सर्वथा सांडके वीर्यपर अवलम्बित है।

अथर्वा । मधु, अश्विनौ । त्रिष्टुब्गर्भा पङ्क्तिः । (अथर्व. ९।१।२)

महत्पयो विश्वरूपमस्याः समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।

यत ऐति मधुकशा रराणा तत्प्राणस्तदमृतं निविष्टम् ॥ ६२२ ॥

(अस्याः पयः) इस गायका दूध (महत् विश्वरूपं) बडा सब रूप बढानेवाला है (उत) और (त्वा समुद्रस्य रेत आहुः) तुझे समुद्रका वीर्य कहते हैं, (यतः) जहाँसे (मधुकशा रराणा एति) यह मीठा दूध देनेवाली गौ शब्द करती हुई आती है. (तत् प्राणः) वह दूध प्राण है (तद् अमृतं निविष्टं) वह अमृत ही सब जगह प्रविष्ट है।

अस्याः पयः अमृतं निविष्टं = इस गौका दूध ऐसा है कि जिसमें अमृत रखा है।

पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।७१।९)

मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ६२३ ॥

(यः एकः सूरः) जो अकेला सूर्य (मनः न) मनके समान (अध्वनः) अपने मार्गका (सद्यः एति) तुरन्त आक्रमण करता है, वह (वस्वः सत्रा ईशे) सभी प्रकारके धनोंका संपूर्ण स्वामी है, उसी प्रकार (राजाना सुपाणी) तेजस्वी, उत्तम हाथवाले (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण दोनों देव (गोषु प्रियं अमृतं) गौओंमें पाया जानेवाला सबका प्यारा दुग्ध (रक्षमाणा वर्तेते) सुरक्षित रखते हैं ।

तमाम धनों और अन्नोंका एकमेव प्रभु सूर्य है और वही तेजस्वी मित्र अग्निका रूप है । वरुण जलका अधिष्ठाता है । ये दोनों देव गौके स्तनमें अच्छा पौष्टिक दूध पैदा करके उसका संरक्षण वेही करते हैं । यह दूध देवोंका सुरक्षित किया हुआ धन है, इसीलिए वह श्रेष्ठ है । यदि दूधमें श्रेष्ठ गुण न हों, तो, भला देवता उसकी रक्षाके लिए इतना परिश्रम क्यों उठाते ? देव भी इसकी रक्षामें दत्तचित्त हैं, इसलिए दुग्धकी श्रेष्ठता निर्विवाद है ।

मित्रावरुणा गोषु प्रियं अमृतं रक्षमाणा वर्तेते = मित्र और वरुण गौओंमें दूधरूपी प्रिय अमृत सुरक्षित रखनेका कार्य करते रहते हैं ।

अथर्वा । भैषज्यं, आयुष्यं, ओषधयः । पञ्चपदा विराडति शक्वरी । (अथर्व. ८।७।१२)

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मध्यं वीरुधां बभूव ।
मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः संभक्ता अमृतस्य
भक्षो घृतमन्नं दुह्रतां गोपुरोगवम् ॥ ६२४ ॥

(आसां वीरुधां) इन वनस्पतियोंका (मूलं मधुमत्) मूल मीठा है, (अग्रं मधुमत्) अगला भाग मीठा है, (मध्यं मधुमत् बभूव) बीचका हिस्सा भी मीठा है, (आसां पर्णं मधुमत्) इनका पत्ता मिठाससे युक्त और (पुष्पं मधुमत्) फूल मीठा हो; (मधोः संभक्ता) मधुसे भरपूर सींची हैं और (अमृतस्य भक्षः) अमृतका अन्न ही है (गो-पुरो-गवं) गाय जिसके अग्रभागमें रखी हुई है, ऐसा (घृतं अन्नं दुह्रतां) घी और अन्न दे दे ।

गो-पुरो-गवं, अमृतस्य भक्षः घृत अन्नं दुह्रतां = गौ जिनमें मुख्य है, ऐसा अमृत अन्न जो घृत आदि अन्न ही है, वह हमें गौ देवे । दूध, दही, घी आदि पदार्थ अमृत अन्न हैं, जो गौ आदिको न मारकर ही मिलते हैं । ये पदार्थ पर्याप्त प्रमाणमें हमें गौसे मिलें ।

[२२४] मधुर दूध देनेवाली गाय ।

अथर्वा । यमः, मन्त्रोक्ताः । त्रिष्टुप् । (अथर्व. १८।४।३०)

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये ।
ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन् ॥ ६२५ ॥

(स्वस्तये) कल्याणके लिए (चतुर्बिलं) चार स्तनरूपी छिद्रोंसे युक्त (कोशं कलशं) मानों जो दूधका खजाना है, ऐसे घडेके तुल्य लेवेसे युक्त (मधुमतीं इडां धेनुं) मीठे दूधवाली इडा नामक गायको (दुहन्ति) निचोडते हैं । हे अग्ने ! (जनेषु ऊर्जं मदन्तीं) जनतामें अपने दुग्धरूपी अन्नसे तृप्ति पैदा करती हुई (अदितिं) मारनेके अयोग्य गायको (परमे व्योमन्) विश्वमें (मा हिंसीः) मत मार ।

मधुमतीं इषां धेनुं चतुर्बिलं कलशं स्वस्तये दुहन्ति = मधुर रसवाला अन्न देनेवाली गौके चार छेदवाले लेवेको सबके कल्याणके लिये दुहते हैं।

जनेषु ऊर्जं मदन्तीं अदितिं मा हिंसीः = जनोंको बलवर्धक अन्न देनेवाली और तृप्त करनेवाली यह गौ है, अतः इसकी हिंसा न कर।

गोतमो राहूगणः। विश्वेदेवाः। गायत्री। (ऋ० १।९०।८)

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ ६२६॥

(नः वनस्पतिः) हमारे लिए सभी पेड़ (मधुमान् अस्तु) मीठा रस देनेवाला बनें (सूर्यः मधुमान्) सूर्य हमें मधुर प्रकाश दे (नः गावः) हमारी गौएँ (माध्वीः भवन्तु) मधुर दूध देनेवाली बनें।

नः गावः माध्वीः भवन्तु = हमारी गौवें मधुररस देनेवाली हों।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः (वृष्टिकामः) कुमार आग्नेयो वा। पर्जन्यः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।१०१।१)

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघं ऊधः।

स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति॥ ६२७॥

(ज्योतिः अग्राः तिस्रः वाचः प्र वद) जिनके अग्रभागमें प्रकाश है, ऐसी तीन वाणियोंको तू खूब बोल (याः) जो (एतत् मधुदोघं ऊधः दुह्रे) इस मधुमय रसका दोहन करनेवाले दुग्धाशयरूपी मेघको दुहती हैं; (सः वृषभः) वह बैलके समान गरजनेवाला मेघ (सद्यः जातः) तुरंत पैदा होकर (ओषधीनां गर्भं) वनस्पतियोंके गर्भको (वत्सं कृण्वन्) बछड़ा करते हुए (रोरवीति) खूब गरजता है।

मधुकोशं ऊधः दुह्रे = मधुररसका खजाना ऐसा यह लेवा दुहा जाता है।

वामदेवो गौतमः। क्षेत्रपतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।५७।२)

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।

मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतं ऋतस्य नः पतयो मृळयन्तु॥ ६२८॥

हे (क्षेत्रस्य पते) खेतके मालिक! (धेनुः पयः इव) गाय दूध जिस प्रकार देती है, वैसे ही (मधुमन्तं ऊर्मिं) मीठे तरंगको (अस्मासु धुक्ष्व) हममें दोहन करके रखो (ऋतस्य पतयः) ऋतके अधिपति, (सुफलं मधुश्चुतं घृतं इव) अत्यन्त विशुद्ध तथा मधु टपकानेहारे घृतके समान (नः मृळयन्तु) हमें सुख दें।

विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ३।३९।६)

इन्द्रो मधु संभृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः।

गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान्॥ ६२९॥

इन्द्रने (उस्रियायां संभृतं मधु) गौमें इकट्ठा कर रखा हुआ मीठा दूध (विवेद) प्राप्त किया। पश्चात् (पद्वत् शफवत् गोः नमे) पैरोंसे युक्त एवं खुरवाली गौएँ लाया (दक्षिणावान्) दानशूर इन्द्रने (गुहा हितं) गुफामें छिपे हुए (गुह्यं) लुक छिपकर संचार करनेवाले तथा (अप्सु गूळ्हं) जलोंमें गुप्त रूपसे रहनेवाले शत्रुको (दक्षिणे हस्ते दधे) दाहिने हाथमें धर दिया, पकड़ रखा।

उस्रियायां संभृतं मधु विवेद = गौमें भरा हुआ मधुर रस प्राप्त किया।

भूतांशः काश्यपः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।१०६।१०)

आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनवारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात्सचेथे ॥ ६३० ॥

हे अश्विनौ ! (आरंगरा इव) दो गर्जना करनेवाले मेघोंकी तरह तुम दोनो (मधु आ ईरयेथे) जलको चारों ओरसे भेजते हो, (गवि नीचीनवारे) गायमें नीचे मुँहवाले लेवेमें (सारघा इव) मधुमक्खियोंके समान मधुर दूध प्रेरित करते हो, (कीनारा इव) जैसे साधारण मनुष्य काम करनेपर पसीनेसे तर हो जाते हैं, वैसे ही तुम (स्वेदं आसिष्विदाना) पसीना टपकाते हो और (सूयवसात् क्षामा इव) अच्छे घासके खानेसे दुबलीपतली गाय जैसे पुष्ट हुआ करती है वैसे ही तुम (ऊर्जा सचेथे) बलको प्राप्त करते हो ।

गवि नीचीनवारे मधु आ ईरयेथे= गौमें नीचेकी ओर मुंह करके लेवेमें मधुर दूध रहता है, उसे तुम प्रेरित करते हो ।

सूयवसाद् क्षामा ऊर्जा सचेथे= उत्तम घास खाकर दुर्बल गौ भी बलको प्राप्त करती है, यह तुम्हारी ही योजना है ।

[२२५] ओषधियोंका रस ही दूध है ।

गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।७३।९)

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तं उतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥ ६३१ ॥

(अस्य यत् चक्रं) इसका जो एक पहिया (अप्सु आ निसत्तं) जलोंमें बिठाया गया है, (उत) और (तत् अस्मै) जो उसे (मधु चच्छद्यात् इत्) मधुका दान करता रहे, इसलिये (यत् ऊधः पृथिव्यां अति सितं) जो रसका भाण्डार भूमिमें रखा है वही (ओषधीषु गोषु) वनस्पतियोंमें और गायोंमें (पयः अदधाः) दुग्ध या रस रूपमें रख दिया गया है ।

जो रस जलोंमें है वही भूमिमें प्रविष्ट होकर औषधियोंके रूपसे ऊपर आता है, उसको गौवें खाती हैं और वही रस दूधके रूपमें हमें प्राप्त होता है ।

यत् अप्सु निषत्तं, यत् पृथिव्यां अतिसितं, (यत्) ओषधीषु मधु चच्छद्यात् (तत्) गोषु पयः अदधाः= जो जलोंमें रस था, जो पृथिवीमें घुल गया था, और जो ओषधियोंमें मधुर रस था, वही गौओंमें दूधके रूपसे मिलता है ।

मेधातिथिः काण्वः । आपः । गायत्री । (ऋ० १।२३।१६)

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् । पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ ६३२ ॥

(अध्वरीयतां) यज्ञकी इच्छा करनेहारे हमारे सदृश लोगोंकी (जामयः अम्बयः) प्रिय तथा पूज्य गोमाताएँ (मधुना) अत्यन्त माधुर्यसे युक्त (पयः पृञ्चतीः) दूध देती हुई (अध्वभिः यन्ति) मार्गोंसे जाती हैं । (मधुना पयः पृञ्चतीः) मिठाससे भरा दूध देनेवाली (जामयः अम्बयः) पूज्य गोमाताएँ हैं ।

पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् । (ऋ० १।६९।२)

वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ ६३३ ॥

(वेधाः) कर्तृत्ववान (अ-दृप्तः) गर्वरहित (विजानन्) विशेष रीतिसे जानता हुआ (अग्निः) अग्नि (गोनां ऊधः न) गायोंके स्तनोंकी नाईं (पितूनां) सब अन्नोंको (स्वाद्म) मधुरता देनेवाला है (जनेन शेवः) जनतामें सेवा करनेयोग्य मानवके तुल्य (दुरोणे निषत्तः) घरमें बैठा हुआ यह अग्नि (रण्वः) रमणीय है ।

गोनां ऊधः पितूनां स्वाद्म= गायोंका स्तन अन्नोंको मधुरिमामय बना देता है । जिससे अन्नोंमें मिठास आती है, ऐसा पेय गायके स्तनोंसे ही मिलता है।

त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।५।४)

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्र दिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥ ६३४ ॥

(ऋतस्य वर्तनयः) यज्ञके प्रवर्तक (प्र दिवः इषः) अत्यन्त दिव्य अन्न पानेकी इच्छा करनेवाले (वाजाय सुजात हि सचन्ते) बल या अन्नके लिए सुन्दर ढंगसे उत्पन्न अग्निकी सेवा करते हैं, इसके समीप आते हैं, (वावसाने रोदसी) सबको ढकनेवाली द्यावापृथिवीके (अधिवासं) ऊपर निवास करनेवाले अग्निको (मधूनां घृतैः अन्नैः वावृधाते) मधुओंसे युक्त घृतों और अन्नोंसे बढाते हैं ।

वव्रिरात्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप् । (ऋ० ५।१९।४)

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥ ६३५ ॥

(दुग्धं न) दूधके तुल्य (प्रियं काम्यं) प्यारे और कमनीय स्तोत्रको जो (अजामि) निर्दोष है, उसे (जाम्योः सचा) द्यावापृथिवीके साथ रहनेवाला अग्नि जो (शश्वतः दभः) हमेशा शत्रुका विनाशकर्तापर (अदब्धः) शत्रुसे कभी परास्त न होता हुआ (घर्मः न) घर्मके तुल्य (वाजजठरः) अन्नसे जिसका पेट भरा हो, ऐसा है, सुन ले ।

प्रियं काम्यं दुग्धं= दूध ही सबका प्रिय और इष्ट है ।

[२२६] गायका दोहन ।

अथर्वा । कश्यपः, सर्वे ऋषयः, छन्दांसिच, विराट् । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ८।९।१)

कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्याः पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ ३३६ ॥

(तौ कुतः जातौ) वे दोनों कहाँसे प्रकट हुए, (सः अर्धः कतमः) वह कौनसा अर्ध भाग है ? और वह (कस्मात् लोकात्) किस लोकमेंसे तथा (कतमस्याः पृथिव्याः) किस भूविभागसे (सलिलात् विराजः) जलतत्त्वसे विराजमान होकर (वत्सौ उत् एतां) दो बछडे प्रकट होते हैं ? (तौ त्वा पृच्छामि) उन दोनोंके बारेमें मैं तुमसे पूछता हूँ, उनमेंसे वह गाय (कतरेण दुग्धा) किससे दुही जाती है ?

गायका दोहन किसने किया ? क्योंकि कुशल हाथोंसे ही गायका दोहन होना चाहिये, वैसा हुआ या नहीं ?